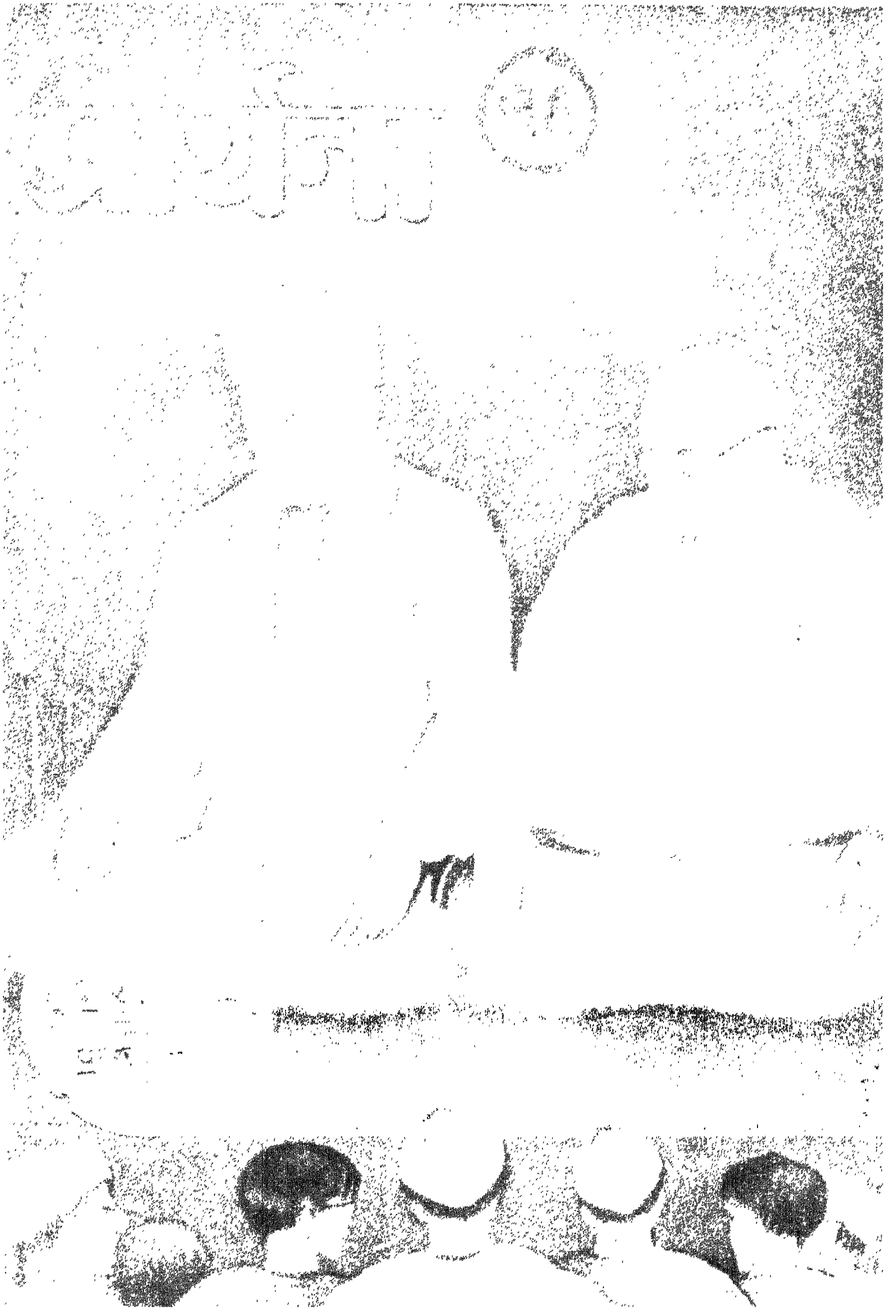


प्रार्थना

महात्मा गांधी

तथा

महामना मालवीयजी

प्रकाशक

शारदा पुस्तक भंडार
प्रयाग

थम संस्करण
वत् २००८

मूल्य २

प्रकाशक
शारदा पुस्तक भंडार
९८ लूकरगंज प्रयाग

मुद्रक
'अभ्युदय' प्रेस
प्रयाग ।

"बच्चों के बीच
दार्शनिक चर्चा नहीं लानी
चाहिये, इस अभिप्राय से मैं गीता
का अर्थ करने नहीं बैठता था। लेकिन
गांधीजी ने भारपूर्वक कहा कि गीता परिचय तो
सबको बचपन से ही हो जाय यह इष्ट है।"
ऊपर लिखा हुआ वाक्य पूज्य महात्मा गांधीजी के साथी और परम भक्त काका
साहब कालेलकर ने "आश्रम भजनावली" की प्रस्तावना में लिखा है। हमारी
धारणा भी ऐसी है कि बालकों को बचपन में ही ऐसे साहित्य से
परिचय अवश्यकरा देना चाहिये जिनका हम चाहते हैं कि
आगे चलकर उनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान हो
और जो उनके चरित्र गठन मेंसहायक हो।
हमारा देश आज
अत्यन्त विषम परिस्थितियों में
से होकर गुज़र रहा है। हमारे नवीन गण-
तंत्र राज्य और हमारी अपनी शासन करने की
योग्यता आज कसौटी पर है। चारों ओर पक्षपात, घूस-
खोरी, बदनीयती, कुनबापरस्ती, तथा अनेक प्रकार के ज़हरीले
तूफ़ान उठ रहे हैं और जनता किं कर्तव्य विमूढ़ सी हो रही है। इन
विषैले तूफ़ानों के मूल में जब तक हम प्रहार न करेंगे, हमें सफलता मिलनी
मुश्किल है। और इन सबका मूल कारण क्या है? कारण है हमारा नैतिक
पतन, हममें चरित्र बल की कमी। और हममें चरित्रबल की कमी, हमारे
नैतिक पतन, होने का कारण है हमारी हजारों वर्षों की गुलामी जिससे
हमने अभी अभी छुटकारा पाया है तथा पूज्य महात्मा गांधीजी
के शब्दों में यह कि "भारत धर्महीन होता जा रहा है, हम
परमात्मा से विमुखहोते जा रहे हैं।" हममें, हमारी
भावी संतति में धर्म का प्रेम बढ़े, परमात्मा
पर हमारी श्रद्धा बढ़े, इस पुस्तक के
प्रकाशन का यह सर्वोपरि
उद्येश्य है।



दो

... युग में भारत ने अपने अपने क्षेत्रों में यों तो अनेक महान् ... को जन्म दिया है किन्तु उनमें भी महात्मा गांधी और महामना ... जी सर्वोपरि हुये हैं क्योंकि यह दोनों महात्मा सभी क्षेत्रों में समान रूप से महान रहे हैं। कोई ... क्षेत्र में महान रहा है तो धार्मिक, ... तथा अन्य क्षेत्र में उसने महानता नहीं प्राप्त की, किसी ने धार्मिक क्षेत्र में काम किया तो ... और सामाजिक क्षेत्र में वह शून्य था। पर इन दो महान ... ने तो हमारे धार्मिक, ... शिक्षा, सभी क्षेत्रों को अपने ... कार्यों से ... किया है। और यह दोनों महापुरुष इतने ... कार्य सभी क्षेत्रों में कर सके और सर्वोपरि प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके इसका कारण? इसका कारण एक था और वह था इनकी ईश्वर में महान निष्ठा और इनके चरित्र की शुद्धता तथा ...।

आज तक ... रूप से यह देखा जाता है कि दो महान शक्तियाँ एक ही समय में एक साथ रहती हैं तो प्रायः वे आपस में टकरा जरूर जाती हैं। यह भी इनकी ... और इनके चरित्र की ... और महानता थी कि एक ही समय

[illegible] में [illegible] करते हुए, और [illegible] में [illegible] [illegible] यद्यपि दोनों की [illegible] अवस्थाओं में काफी अन्तर था।

भगवान राम और श्रीकृष्ण हिन्दू धर्म और संस्कृति के दो महान अवतार माने हैं। भगवान राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। वह समाज के नीति नियमों का, उसके विधानों का पूर्णरूप से पालन करते थे। भगवान श्रीकृष्ण ने समाज की उन बातों का, जो आत्मा की उन्नति में बाधक होती थीं, खुलकर विरोध किया और नई नई [illegible] बन्धनों को तोड़ देने की सलाह दी। उन्होंने समाज के लिये नवीन नियम भी बनाये। ये दोनों महापुरुष अलग अलग युगों में हुए और अपने अपने युगों की [illegible] की पूर्ति उनके द्वारा हुई। भगवान राम [illegible] थे तो भगवान श्रीकृष्ण [illegible]।

बुद्ध [illegible] और महात्मा गांधी ने [illegible] युग में [illegible] [illegible] [illegible] महात्मा गांधी [illegible] श्रीकृष्ण [illegible] [illegible] के नीति नियमों [illegible] [illegible] करते थे। [illegible] [illegible] थे कि वह भगवान श्रीकृष्ण की भांति [illegible] थे।

महात्मा गांधीजी क्रान्तिकारी थे। समाज के सड़े गले संगठन, उसकी गलत विचार धाराओं तथा नीति नियमों के वह कट्टर विरोधी थे और उन्हें जड़ समेत उखाड़ फेकना चाहते थे। उन्हों ने उन सामाजिक बन्धनों के खिलाफ़ बगावत की जो उनकी राय में आत्मा की उन्नति में बाधक थे। गांधीजी अपने आत्मा की पुकार पर अकेले ही आगे बढ़ सकते थे बिना समाज की तनिक भी पर्वाह किये हुये। मालवीय जी बिना समाज को साथ लिये हुये एक कदम भी आगे बढ़ने में हिचिकते थे।

पर जैसे हमारे लिये राम और कृष्ण दोनों ही महान और पूज्य हैं वैसे ही इस युग में हमारे लिये मालवीयजी और महात्मा जी महान और पूज्य हैं। महामान्य श्री श्रीनिवास जी शास्त्री ने इसीलिये कहा था:—"परब्रह्म परमात्मा की यह असीम कृपा है कि महात्मा गांधी और पंडित मालवीय जी जैसी महान शक्तियाँ परस्पर प्रेम में बंधी हुई इस संसार में वास कर रही हैं।"

पूज्य महात्माजी ने पूज्य मालवीय जी के सम्बन्ध में एक बार लिखा था:—

"मैं तो मालवीयजी महाराज का पुजारी हूँ। पुजारी कैसे स्तुति के बचन लिखे? वह तो जो कुछ लिखेगा उसे अपूर्ण सा लगेगा। मालवीयजी के दर्शन मैंने सन् १९१० के साल में चित्र द्वारा किया था। वह चित्र विलायत में 'इंडिया' पत्र—जो मि. डिगवी निकालते थे—उसमें था। आज मालवीय जी

के साथ देश भक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है ? यौवन काल में लेकर आज तक उनकी देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चला आया है ।"

मालवीयजी के स्वर्गवास पर महात्माजी ने केवल दो पंक्तियों में सब कुछ कह दिया था :—"आज भारत वर्ष द्वारा तन्मयता के साथ पूजित स्वर्गवासी हो गये। मालवीय जी चिरंजीवी हों ।"

और मालवीय जी ? उनका तो महात्माजी पर इतना अधिक स्नेह था कि जब जब अंग्रेज सरकार ने उनके "अत्यन्त प्रिय छोटे भाई" महात्माजी पर हमला किया तो वह अपने को रोक न सके और पूर्णरूपेण सहमत न होते हुये भी वह महात्मा जी द्वारा चलाये गये आन्दोलनों में कूद पड़े। यहाँ तक कि जेल भी गये और उन्होंने सरकार का डटकर मुकाबिला किया। अपने अन्तिम क्षणों में भी उन्हें कोई चिन्ता थी तो यही कि महात्माजी आमरण उपवास करने जा रहे हैं, उनका क्या होगा ? देश का क्या होगा ? अपनी बेहोशी की हालत में भी वह महात्माजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में ही पूछते रहे ।

एक बार एक स्थान पर महात्माजी ने मालवीयजी को लक्ष्य करते हुये कहा था :—

"पंडितजी तो मदन मोहन हैं, मैं तो मोहन का दास मात्र हूँ ।"

मालवीय जी ने उत्तर में कहा था :—"महात्माजी तो राम मय हैं। उनको समता कौन कर सकता है ?"

ऐसा था दोनों का परस्पर स्नेह और एक दूसरे में आदर भाव।

एक तो आँखों देखी घटना है। पूज्य मालवीय जी के पास एक पुरानी चाल के पंडितजी बैठे हुये थे। उन्होंने महात्मा जी को कुछ बुरा भला कहना शुरू किया। मालवीयजी ने उन्हें हाथों के इशारे से अपने समीप बुलाया और बहुत धीरे से उनसे कहा :—

"छिः छिः। भगवान की निन्दा भगवान के भक्त के लिये अशोभनीय है। कहो, कहो, प्रतिज्ञा करो कि आज से कभी गांधीजी की बुराई न करोगे।"

पंडितजी को अन्त में प्रतिज्ञा करनी ही पड़ी कि अब वह कभी महात्माजी की निन्दा न करेंगे।

पूज्य महात्मा जी को स्वयं मालवीय जी के अपने प्रति असीम स्नेह का पूरा ज्ञान था। अपने यरवादा जेल में किये गये हरिजन सम्बन्धी उपवास के सम्बन्ध में लिखते हुये पूज्य महात्माजी ने अपने सुपुत्र श्री देवदास गांधी को लिखा था :—

"मालवीय जी को समझाने की कोई बात ही नहीं है। मैं यह मानता हूँ कि वे तो हर्ष के आँसू बहाते होंगे और उनके

हृदय से पल-पल में मेरे लिये आशीर्वाद के उद्गार निकलते होंगे ।"

इस पुस्तक का संग्रह करते समय इन दो महात्माओं की जो अन्य विशेषतायें हमें दिखलाई पड़ीं वह ये हैं :—

पूज्य महात्माजी राम के भक्त थे और वह भी साकार या अयोध्या के राजा रामचन्द्र के नहीं बल्कि निराकार राम के। पूज्य मालवीयजी महराज कृष्ण के भक्त थे और उनके साकार कृष्ण ही महात्माजी के निराकार राम भी थे।

परम वैष्णव दोनों ही थे, महात्माजी भी और मालवीय जी भी; और दोनों ही मानव की सेवा को भगवान की ही सेवा मानते थे। दोनों का ही मूल मंत्र जनता जनार्दन की सेवा था।

सन १९१५ में प्रयाग में होने वाले कुंभ के अवसर पर महामना मालवीयजी ने जनता की सेवा करने के लिये 'सेवा-समिति' की स्थापना की थी। उन्होंने सेवा समिति के आदर्श वाक्य या उद्येश्य वर्णन के लिये निम्नलिखित श्लोक चुना था :—

> नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम् ।
>
> कामये दुःख तप्तानाम्, प्राणिनामार्ति नाशनम् ॥"

अर्थात् "नहीं कामना मुझे राज्य की, स्वर्ग या कि नवजीवन की।

पीड़ित प्राणिमात्र की पीड़ा, हरूँ, साध है यह मन की ॥"

पूज्य महात्मा जी भी उस कुंभ में सेवा समिति के कैम्प में ही

ठहरे हुये थे। उन्हें यह श्लोक इतना पसन्द आया कि उन्होंने इसे अपनी दैनिक प्रार्थना में शामिल कर लिया और आश्रम में आज भी जो प्रार्थना होती है उसमें यह श्लोक नित्य दुहराया जाता है।

महात्मा जी के अत्यन्त प्रिय भजन :—

"वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो पीर पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे पर, मन अभिमान न आणे रे॥"

में भी यही बात दूसरी प्रकार से कही गई है।

आत्मा और उद्देश्य की यह एकता ही इन दो महान आत्माओं के पारस्परिक ऐक्य, स्नेह और आदर बुद्धि का कारण रही है।

ईश्वर तथा प्रार्थना संबधी इन दोनों महात्माओं के प्रवचनों तत्संबधी उनके उपदेशों, और उनके प्रिय श्लोकों तथा भजनों का इस पुस्तक में हमने संग्रह किया है। इन महर्षियों की वाणी की गंभीरता तक संभव है सब लोग—विशेष कर विद्यार्थी—न पहुँच सकें किन्तु इनको बारबार पढ़ने और स्मरण करते रहने मात्र से ही उनमें एक श्रद्धा-भावना का पैदा हो जाना निश्चित है और हमें पूर्ण विश्वास है कि एक बार श्रद्धा जग जाने पर उनके जीवन में महानता के वह बीज अंकुरित हो जांयगे जो समय आने पर निश्चय ही फूलें और फलेंगे। पूज्य महात्मा जी ने इसीलिये श्रद्धा पर बहुत ज़ोर दिया है। उन्होंने कहा है :—

"हमारी गाड़ी को चलाने वाला मनुष्य नहीं, ईश्वर है। उसमें बैठे हुये हम लोग जब तक उस पर श्रद्धा रखेंगे तब तक गाड़ी चलती रहेगी। श्रद्धा छोड़ी कि गाड़ी अटकी समझो।"

अन्त में हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि जिस उद्येश्य को सामने रखकर यह पुस्तक संकलित तथा प्रकाशित की जा रही है वह पूर्ण रूप से सफल हो।

—संग्रहकर्ता

—:०:—

स्वर्गीय पंजाब केसरी लाला लाजपत रायजी



'Of all the Indian Leaders I love Malaviyaji the most, though I respect Gandhiji the best. That, I think, is a fair distribution of honour"

—The late Punjab Kesari Lala Lajpat Rai.

"समस्त भारतीय नेताओं में मैं मालवीयजी को सबसे अधिक प्रेम करता हूँ यद्यपि गांधी जी पर मेरी सबसे अधिक श्रद्धा है। मैं समझता हूँ कि सम्मान का यह एक समुचित विभाजन है।

—स्वर्गीय पंजाब केसरी लाला लाजपत रायजी



पूज्य महात्माजी सायंकालीन प्रार्थना कर रहे हैं।

प्रार्थना

ईश्वर

"एक कोई ऐसी शक्ति है जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, जो गुप्त है किन्तु जो सभी चीजों में व्याप्त है। मैं उसे अनुभव करता हूँ पर उसे देख नहीं पाता। यह वही दिखाई न पड़ने वाली शक्ति है जो अपना अनुभव तो करा देती है पर जिसके होने का कोई प्रमाण दे सकना असंभव है क्योंकि वह उन सब चीजों से बिलकुल भिन्न है जिन्हें मैं अपनी इन्द्रियों द्वारा अनुभव करता हूँ। वह इन्द्रियों द्वारा अनुभव किये जाने से परे है क्योंकि ईश्वर के अस्तित्व के प्रश्न पर बहुत थोड़े दायरे में ही तर्क किया जा सकता है।

हमें मालूम हैं कि साधारण मामलों में भी साधारण जनता नहीं जानती कि उन पर कौन राज्य करता है, क्यों

करना है और कैसे करता है। वह राज्य करता है और लोग जानते हैं कि कोई शक्ति है जो निश्चय ही राज्य करती है।

कुछ वर्ष हुये, मैसूर के अपने दौरे में बहुत से ग़रीब किसानों से मेरी भेंट हुई और उनसे पूछने पर मुझे मालूम हुआ कि वे यह नहीं जानते थे कि मैसूर का राजा कौन है। उन्होंने केवल इतना ही बतलाया कि कोई ईश्वर उनपर राज्य करता है। यदि इन आदमियों को अपने राजा के बारे में इतना कम ज्ञान है तो मुझे जो उनके राजा और उनके मुकाबिले में ईश्वर से बहुत ही छोटा प्राणी हूँ—इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि मैं, राजाओं के राजा, ईश्वर के अस्तित्व को अनुभव नहीं कर पाता। ऐसा होने पर भी मैं मैसूर के उन बेचारे ग्राम-वासियों की तरह यह अनुभव ज़रूर करता हूँ कि सारी सृष्टि में एक तरह की नियमितता है, और हर चीज़ तथा हर प्राणी पर, जो है या जीवित है, एक न बदल सकने वाले कानून का शासन चल रहा है।

यह कोई अंधा कानून नहीं है क्योंकि कोई भी अंधा कानून जीवित प्राणियों पर शासन नहीं चला सकता। सर जगदीशचन्द्र बोस के अनुसंधानों की कृपा से अब तो यह भी साबित किया जा सकता है कि जड़ में भी जीव है। तो वह कानून जो समस्त जीव मात्र पर शासन करता है, वही ईश्वर है।"

× × ×

"एक अलक्षणीय रहस्यमय शक्ति है जो वस्तुमात्र में व्याप्त है। मैं इसे देखता नहीं परन्तु इसे अनुभव करता हूँ। यह न दिखलाई देने वाली शक्ति अनुभव द्वारा ही जानी जा सकती है। प्रमाणों से इसकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि मेरी इन्द्रियों से जाना जा सकने वाला जो कुछ भी है उस सबसे यह शक्ति बिलकुल अलग है। इसकी सत्ता बाहरी प्रमाणों से नहीं बल्कि उन व्यक्तियों के कायापलट से, उनके जीवन और व्यवहार से सिद्ध होती है, जिन्होंने अपने अन्तःकरण में ईश्वर का अनुभव कर लिया है। यह साक्षी-पैगम्बरों और ऋषियों की अटूट शृंखला के अनुभवों से सब देशों और सब समयों में बराबर मिलती रही है। इस साक्षी को अस्वीकार करना; इस गवाही को न मानना, अपने आपको ही अस्वीकार करना या न मानना है।"

× × ×

"ईश्वर की हस्ती के लिये बुद्धि से प्रमाण मांगो तो कहाँ से मिले ? कारण ईश्वर बुद्धि से परे है। अगर ऐसा कहें कि बुद्धि से आगे कुछ नहीं है तो जरूर मुश्किल में पड़ जाते हैं। ख़ुद हमारा जीव या आत्मा बुद्धि से परे है। उसका अस्तित्व सिद्ध करने के लिये बुद्धि के प्रयोग हुये हैं। यही बात ईश्वर के बारे में भी कही जा सकती है। मगर जिसने आत्मा और ईश्वर को बुद्धि से ही जाना है, उसने कुछ भी नहीं जाना। बुद्धि भले ही

किसी समय ज्ञान प्राप्त करने में मददगार हुई हो मगर जो आदमी वहीं अटक जाता है, वह आत्म-ज्ञान का लाभ तो बिलकुल नहीं उठा सकता जिस तरह कोई अनाज खाने के फायदे बुद्धि से जानता हो तो वह आनाज खाने से होने वाला फायदा नहीं उठा सकता। आत्मा या ईश्वर जानने की चीज नहीं है और इसीलिये वह बुद्धि से परे है। ईश्वर की पहचान की दो मंजिलें हैं। पहली मंजिल श्रद्धा और दूसरी तथा आखिरी मंजिल उससे होने वाला अनुभव-ज्ञान। दुनिया के बड़े से बड़े शिक्षकों ने अपने अनुभवों की दुहाई दी है। और जिन्हें दुनिया में मूर्ख समझकर अलग निकाल दें, उन्होंने भी अपनी श्रद्धा का सबूत दिया है। इनकी श्रद्धा पर हम अपनी श्रद्धा निर्माण करेंगे, तो किसी दिन अनुभव भी मिल जायगा। एक आदमी दूसरों को आँखों से देखे, मगर बहरा होने के कारण उसकी सुने कुछ भी नहीं और फिर कहे मैंने उसे सुना नहीं, तो यह ठीक नहीं है। इसी तरह बुद्धि से ईश्वर को नहीं पहचाना जा सकता, यह वाक्य अज्ञान सूचक है। जैसे सुनना आँख का विषय नहीं है, वैसे ही ईश्वर को पहचानना इन्द्रियों का या बुद्धि का विषय नहीं है। इसके लिये दूसरी ही शक्ति चाहिये और वह है अचल श्रद्धा। हमने देखलिया कि बुद्धि को क्षण क्षण में भरमाया जा सकता है लेकिन सच्ची श्रद्धा को भरमा सके, ऐसा माई का लाल आजतक पृथ्वी पर देखने में नहीं आया।"

× × ×

प्रार्थना

"ईश्वर को मानना चाहिये क्योंकि हम अपने को मानते हैं। जीव की हस्ती है तो जीव मात्र का समुदाय ईश्वर है और यही मेरी दृष्टि में प्रबल प्रमाण है।"

× × ×

"ईश्वर को नहीं मानने से सबसे बड़ी हानि वही है जो हानि अपने को नहीं मानने से हो सकती है अर्थात् ईश्वर को न मानना आत्म हत्या सा है। बात यह है कि ईश्वर को मानना एक वस्तु है और ईश्वर को हृदयगत करना [illegible] अनुकूल आचार रखना दूसरी वस्तु है। सचमुच इस जगत में नास्तिक कोई है ही नहीं। [illegible] मात्र है।"

× × ×

"ईश्वर का [illegible] से सर्वथा मुक्त होने से ही हो सकता है अन्यथा कभी नहीं। जो मनुष्य ऐसा कहता है कि मुझे [illegible] हुआ है उसे [illegible] नहीं हुआ ऐसा मेरा मत है। यह वस्तु [illegible] है, परन्तु [illegible] है। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।"

× × ×

ईश्वर में विश्वास रखने से ही मैं जिन्दा रह सकता हूँ। ईश्वर की मेरी व्याख्या याद रखना चाहिये। मेरे समक्ष सत्य से भिन्न कोई ईश्वर नहीं है। सत्य ही ईश्वर है।

× × ×

"आप और मैं इस कमरे में बैठे हैं. इस सचाई से तो

अधिक, मुझे ईश्वर की सत्ता का निश्चय है। मैं यह भी कहता हूँ कि मैं बिना हवा और पानी के जी सकता हूँ परन्तु उसके बिना नहीं। आप मेरी आँखें निकाल लें, मैं मरूँगा नहीं। आप मेरी नाक काटलें, मैं मरूँगा नहीं। परन्तु ईश्वर में मेरे विश्वास को उड़ादें तो मैं मरा ही पड़ा हूँ।"

प्रार्थना

"प्रार्थना आश्रम की नींवका मुख्य भाग है। इसलिये इस वस्तुको हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। प्रार्थना मन से न हो, तो सब व्यर्थ है।"

"प्रार्थना खाने की अपेक्षा करोड़ गुनी ज्यादा उपयोगी चीज है। खाना भले छूट जाय लेकिन प्रर्थना कभी न छूटे। प्रार्थना छूट जाय तो मनुष्य को बड़ा दुख होना चाहिये। खाना छोड़ना कितनी बार शरीर के लिये लाभकारी होता है। प्रार्थना का छूट जाना कभी लाभदायक हो ही नहीं सकता।"

"प्रार्थना में जो कुछ बोला जाता है उसे सबको शीघ्र ही समझ लेना चाहिये। मूल भाषा न आये तो उसका अर्थ तो जान ही लेना चाहिये और उसका मनन करना चाहिये।"

"मैं प्रार्थना को इसलिये महत्व देता हूँ क्योंकि मैं एक उच्चतर सत्ता में विश्वास करता हूँ। जीवन केवल एक घटना-

मात्र नहीं है। जीवन और मृत्यु ईश्वर के हाथों में हैं। यदि हम पूरे दिन भर ईश्वर का चिन्तन किया करें, तो बहुत अच्छा, किन्तु चूंकि यह संभव नहीं है, इसलिए हमें प्रति-दिन कम-से-कम कुछ घंटों के लिये तो उसका स्मरण करना ही चाहिये। यदि हम प्रतिदिन ईश्वर की कृपाओं के लिये कृतज्ञता प्रकाश नहीं करते, तो जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता। हम कुछ समय तक शारीरिक भोजन के बिना तो काम चलाने में समर्थ हो सकते हैं, किन्तु आत्मा के भोजन-प्रार्थना-की उपेक्षा हम नहीं कर सकते। हमें किसी से भिक्षा नहीं माँगनी चाहिये, किन्तु ईश्वर से भिक्षा माँगने में कोई लज्जा नहीं है।"

"प्रार्थना में उपस्थित रहने का ध्येय ईश्वर से संभाषण करना एवं अन्तरात्मा की शुद्धि के लिये प्रकाश प्राप्त करना है, ताकि ईश्वर की सहायता से हम अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर सकें।"

"प्रार्थना करने वाले को याद रखना चाहिये कि जिसका हृदय मलिन है वह मलिनता रहने देकर प्रार्थना नहीं कर सकता।"

"प्रार्थना के समय मलिनता छोड़नी ही चाहिये। जैसे कोई आदमी उसे कोई देखता हो तब बुरा काम करने में शरमायेगा, वैसे ही उसे ईश्वर के सामने मलिन काम करने में शरम आनी चाहिये। मगर ईश्वर तो हमेशा हमारे हर काम को देखता है, विचारों को जानता है। इसलिये ऐसा एक भी क्षण नहीं जब

उससे छिपाकर कोई काम या विचार किया जा सके। इस तरह जो दिल से प्रार्थना करेगा वह अन्त में ईश्वरमय ही हो जायगा यानी निष्पाप बन जायगा।"

"किसी मनुष्य या वस्तु को लक्ष्य में रख कर प्रार्थना हो सकती है, उसका फल भी मिल मिलता है मगर ऐसे उद्देश्य से रहित प्रर्थना आत्मा और जगत् के लिये ज्यादा कल्याणकारी हो सकती है। प्रार्थना का असर अपने पर होता है यानी उससे अन्तरात्मा ज्यादा जागृत होतो है; और ज्यों ज्यों जगृति ज्यादा होती है त्यों त्यों उसका असर ज्यादा फैलता है।"

"प्रार्थना हृदय का विषय है। मुंह से बोलने वगैरह की क्रियायें हृदय को जाग्रत करने के लिये हैं। व्यापक शक्ति जो बाहर है वही अन्दर है और उतनी ही व्यापक है। उसके लिये शरीर बाधक नहीं है। बाधा हम पैदा करते हैं। प्रार्थना से बाधा मिटती है।"

"प्रार्थना से इच्छित फल मिला या नहीं इसका हमें पता नहीं चलता। मैं नर्मदा की मुक्ति के लिये प्रार्थना करूं और उसे दुःख से छुटकारा मिलजाय तो मुझे यह न मान लेना चाहिये कि वह मेरी प्रार्थना का फल है। प्रार्थना निष्फल तो हरगिज नहीं जाती, लेकिन हमें यह पता नहीं लगता कि कौनसा फल देती है। और हमारा सोचा हुआ फल निकल आये तो वह अच्छा ही है ऐसा भी नहीं मानना चाहिये। यहाँ भी गीता बोध पर अमल करना है। प्रार्थना की हो तो भी अनासक्त रहा

जा सकता है। किसी की मुक्ति हमें इष्ट लगे तो उसके लिये हमें प्रार्थना करनी चाहिये, लेकिन वह मिले या न मिले इस बारे में हमें निश्चिन्त रहना चाहिये। उलटा नतीजा निकले तो यह मानने का कारण नहीं कि प्रार्थना निष्फल ही गई।"

"सामुदायिक प्रार्थना की जड़ वैयक्तिक प्रार्थना ही हो सकती है। सामुहिक प्रार्थना पर मैंने वजन दिया है इसका यह अर्थ कभी नहीं है कि वह वैयक्तिक प्रार्थना से अधिक महत्व रखती है। परन्तु क्योंकि हमें सामुदायिक प्रार्थना की आदत ही नहीं है, इसलिये मैंने उस प्रार्थना की आवश्यकता बताने की चेष्टा की है। जो कुछ अनुभव एकान्त में बैठकर तुम्हें होता है, वह समूह में होना अशक्य नहीं, तो कठिन तो है ही; और मैंने ऐसा भी देखा है कि कई लोग एकान्त में बैठकर प्रार्थना कर ही नहीं सकते, समुदाय में ही कर सकते हैं। उनके लिये वैयक्तिक प्रार्थना आवश्यक हो जाती है। मैं यह भी कबूल करूंगा कि सामुदायिक प्रार्थना के बिना मनुष्य रह सकता है, वैयक्तिक के बिना कभी नहीं रह सकता।"

—:०:—

नामजप

"नाम के जप से पाप हरण अच्छी तरह होता है। शुद्ध भाव से नाम जपने वाले को श्रद्धा होती है। वह इस निश्चय के साथ शुरू करता है कि नाम जप से पाप दूर होते ही हैं। पाप दूर होना यानी आत्म शुद्धि होना। श्रद्धा के साथ नाम लेनेवाला कभी थकता तो है ही नहीं। इसलिये जो बात जीभ से होती है वह अन्त में हृदय में उतरती है और उससे शुद्धि होती है। यह अनुभव निरपवाद है। मानस शास्त्री भी मानते हैं कि मनुष्य जैसा विचारता है वैसा बन जाता है। राम नाम की बात भी इसी के अनुसार है। नाम के जप पर मेरी श्रद्धा अटूट है। नाम जप को खोजने वाला अनुभवी था और मेरी पक्की राय है कि यह खोज बहुत ही महत्वपूर्ण है। बेपढ़ों के लिये भी शुद्धि का द्वार खुला होना चाहिये। यह काम नाम जप से होता है। माला वगैरह एकाग्र होने के और गिनती करने के साधन हैं।"

मौन

"हमारे यहाँ मौन की बड़ी महिमा है। समाधि मौन ही है। मुनि शब्द भी इसी से निकलता है। मौन के समय पहले पहल नींद आती है और तरह तरह के विचार आते हैं, यह सब सच है। इसे दूर करने के लिये ही मौन की जरूरत है। हमें बहुत बोलने और आवाजें सुनने की आदत पड़ गई है इसलिये मौन कठिन लगता है। थोड़े अभ्यास से वह अच्छा लगने

लगेगा, और अच्छा लगने के बाद उससे जो शान्ति मिलेगी वह अलौकिक होगी। हम सत्य के पुजारी हैं इसलिये हमें मौन का अर्थ जानकर उस अर्थ के अनुसार ही मौन पालन करने की कोशिश करनी चाहिये। मौन में भी राम नाम तो रटते ही रहें। असल बात यह है कि हमारा मन मौन के लिये तैयार होना चाहिये। जरा विचार करने से उसका महत्व समझ में आसकता है। क्या समूह में पांच मिनट तक स्थिर बैठना हमें नहीं आ सकता? तुम कभी नाटक गये हो? बहुत सी नाटक शालाओं में बातें करने की मनाही होती है। मेरे जैसे रसिया घंटे भर पहले ही जा बैठते हैं। नाटक का शौक एक घंटे मौन रखवाता है। मगर इतना ही काफी नहीं होता। नाटक ४-५ घंटे तक होता है। इस सारे समय में मौन ही रखना पड़ता है। मगर वह अच्छा लगता है। वह मन के अनुकूल है इस लिये मौन कठिन नहीं लगता। तो फिर क्या ईश्वर की खातिर पांच मिनट का मौन भारी लगना चहिये?"

—:०:—

मूर्तिपूजा

"अमुक चीज़ मुझे सहायक नहीं होती, इसलिये दूसरों के बारे में मैं लापरवाह रहूँ और यह जानने का कष्ट न करूँ कि वह उनके लिये सहायक होती है या नहीं, यह ठीक नहीं। मैं जानता हूँ कि अमुक प्रकार की मूर्तिपूजा करोड़ों मनुष्यों को सहायक होती है। इसका कारण यह भी नहीं कि उनका विकास

मुझमें कम हुआ है।...किसी न किसी रूप में वह हम सबके लिये आवश्यक हो जाती है।...मस्जिद में जाना और गिरजे में जाना भी एक तरह की मूर्तिपूजा है। बाइबिल, कुरान, गीता या ऐसे किसी और ग्रन्थ के प्रति पूजाभाव रखना भी मूर्तिपूजा ही है। आपकिसी ग्रन्थ या मकान का उपयोग न करें और अपनी कल्पना में ही परमेश्वर का कोई खास चित्र खींच लें व उसमें कुछ खास गुणों का आरोपण करें तो यह भी मूर्तिपूजा हुई। जो पत्थर की मूर्ति की पूजा करते हैं, उनकी पूजा इन दूसरी पूजाओं से ज्यादा स्थूल है, यह भी मैं नहीं कहूँगा। बड़े बड़े विद्वान न्यायाधीश भी अपने घरों में मूर्तियाँ रखते पाये गये हैं। पंडित मालवीय जी जैसे तत्वज्ञानी अपने गृहदेवता का पूजन किये विना मुंह में अन्न नहीं डालते। ऐसी पूजा को वहम मानने में अज्ञान और अभिमान दोनों हैं। पूजा करने वालों की कल्पना में तो ईश्वर का अधिष्ठान मंत्रपूत पत्थर में है, आस पास पड़े हुये पत्थरों में नहीं।...किसी भी स्वरूप की सच्चे दिल से की गई पूजा, पूजा करने वाले के लिये एक सी अच्छी और फलदायक है।...पूजा की खास विधि या शब्दों की तरफ़ ईश्वर नहीं देखता। वह तो हमारे कृत्यों और हमारी वाणी के आरपार देख सकता है। और हम खुद ही अपने जिन विचारों को नहीं समझ सकते, उन्हें भी वह जानता और समझता है। उसके सामने तो हमारे विचार ही असली चीज़ हैं।"

"यह सच है कि आमतौर पर जो समझा जाता है, उस अर्थ में मैं मूर्तिपूजा को नहीं मानता। मगर यह भी नहीं कि दूसरे

मूर्ति के द्वारा ईश्वर की पूजा करें उसे भी मैं नहीं मानता। एक अर्थ में तो हम सब मूर्ति पूजक हैं। हम अपनी मूर्ति के ईश्वर को पूजत हैं। यह मूर्तिस्थूल रूप की ही होनी चाहिये, सो बात नहीं। ईश्वर के गुण और ईश्वर की कल्पना हर एक मनुष्य की अलग-अलग होती है। इतने पर भी वास्तव में ईश्वर निर्गुण है और कल्पनातीत है। इस प्रकार जब हम अपना ईश्वर संबधी चित्र बनाते हैं तब हम मूर्ति पूजक बन जाते हैं। इसलिये जो पत्थर या धातु की मूर्ति में ईश्वर का निवास मानते हैं, मेरा मन उनकी निन्दा नहीं करता। वे गलत नहीं हैं, क्योंकि ईश्वर सब जगह और सब चीजों में है। किसी चीज़ को हम ईश्वर के रूप में पूजना चाहते हैं तो उसमें ईश्वर का अधिष्ठान करते हैं।"



पूज्य महात्माजी लेख लिख रहे हैं।

ईश्वर और प्रार्थना संबधी सूक्तियां

"रोटी जैसे शरीर का भोजन है उसी तरह प्रार्थना आत्मा का भोजन है।"

"जो लोग भगवान पर भरोसा करते हैं उनके दिलों से वह सारा डर दूर कर देता है।"

"प्रार्थना के लिये पवित्र वातावरण की ज़रूरत है।"

"मेरा एक मात्र वैद्य मेरा राम है। राम शारीरिक, मानसिक, और नैतिक बुराइयों को दूर करने वाला है। जिसके दिल में राम नाम है उसे और किसी दवाई की ज़रूरत नहीं है।"

"भक्त के मन की मन्दिर से उपमा दी गई है जिसमें शुद्ध प्यार हमेशा बना रहता है। दिल में प्रकाश होने से नज़र साफ होती है। जिसका मन भगवान में नहीं लगता, वह भटकता रहता है और उसमें मन्दिर बनने का गुण नहीं आ पाता।"

"अगर मीराबाई की तरह हम सिर्फ़ भगवान के ही सेवक बन जांय तो हमारी सारी तकलीफ़ों का खात्मा हो जाय।"

"इन्सान का सबसे बड़ा उद्योग भगवान को पाने की कोशिश करना है। वह मन्दिरों, मूर्तियों या इन्सान के हाथों बनाई हुई पूजा की जगहों में नहीं मिल सकता और न उसे सिर्फ़ व्रतों और उपवास के जरिये ही पाया जा सकता है।



एस० एस० राजपूताना जहाज़ से गोलमेज कान्फ्रेंस के लिये रवाना होते समय पूज्य महात्मा जी और पूज्य मालवीयजी तट पर एकत्रित विशाल जन समूह का अभिवादन स्वीकार कर रहे हैं। पूज्य मालवीय जी की बाईं ओर स्वर्गीया श्रीमती सरोजनी नायडू और मीरा बहन हैं।

ईश्वर सिर्फ़ प्यार के जरिये मिल सकता है और वह प्यार लौकिक नहीं अलौकिक होना चाहिये।"

"मैं जो रोज़ बोलता हूँ, जो बहस करता हूँ वह भी प्रार्थना ही है।"

"प्रार्थना आत्मा की खुराक है। भगवान के पास से हमें जो खुराक मिल सकती है वह और जगह नहीं मिल सकती।"

"मेरा सलाहकार एक मात्र ईश्वर है।"

"सिर्फ़ भगवान और भगवान के भक्त ही अपने सहारे रह सकते हैं।"

"अनाथ तो अपने को वही समझ सकता है जिसके सिर पर ईश्वर न हो। मगर ईश्वर तो सभी के सिर पर है। यानी हम घोर अज्ञान के कारण अपने को अनाथ मानते हैं।"

"झूठी शर्म छोड़ देनी चाहिये।"

"विनय न छोड़ना चाहिये और दुःख पड़े तो उसे सहने के लिये तैयार रहना चाहिये। ऐसा करने वाले की पवित्रता ऐसी होनी चाहिये कि उसका असर पड़े विना रह ही नहीं सकता।"

"गुस्सा आये तब चुप हो जाना और राम नाम लेकर उसे निकाल देना चाहिये।"

"विना उस प्रभु की शरण में गये, विचारों पर पूर्ण आधिपत्य असंभव है। पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन के अपने इस सतत प्रयत्न में, हर वक्त, मैं इस सीधे-सादे सत्य का अनुभव कर रहा हूँ।"

"बुद्धि के विकास की सीमा होती है। हृदय के विकाश का अन्त नहीं।"

"ईश्वर सत्य है यह कहने के बजाय मैं यह कहता हूँ कि सत्य ईश्वर है। मुझे हमेशा ऐसा नहीं सूझा था। यह सूझ तो चार-एक वर्ष पहिले ही पड़ी। मगर अनजान में ही मेरा बर्ताव इसी किस्म का रहा है। ईश्वर को मैंने सत्य के ही रूप में जाना है। एक समय ऐसा था जब ईश्वर की हस्ती के विषय में शंका थी। मगर सत्य की हस्ती के बारे में कभी नहीं थी। यह सत्य केवल जड़ गुण नहीं बल्कि शुद्ध चैतन्यमय गुण है। वही राज्य करता है, इसलिये ईश्वर है।"

"हमारी गाड़ी को चलाने वाला मनुष्य नहीं, ईश्वर है। उसमें बैठे हुये हम लोग जब तक उसपर श्रद्धा रखें, तब तक गाड़ी ज़रूर चलती रहेगी। श्रद्धा छोड़ी कि गाड़ी अटकी समझो।"

"हमारे रोजमर्रा के काम कितने ही छोटे हों मगर उनसे हम पूरा सन्तोष मानें, तो इसके बराबर और कोई अच्छी बात नहीं है। जो राह देखते हैं, जाग्रत रहते हैं और प्रार्थना करते हैं, उनके लिये ईश्वर बड़े काम और बड़ी जिम्मेदारियाँ जुटा देता है।"

"बुद्धिमान का और मूर्ख का, पापी का और सन्त का ईश्वर एक है।"

"राम नाम के प्रभाव से पत्थर तैरने लगे, राम नाम के बल से बानर सेना ने रावण के छक्के छुड़ा दिये। इसलिये



गोलमेज परिषद की बैठक में महात्मा जी और मालवीय जी।

"[illegible] ने कहा है कि [illegible] का मल धो डालने के लिये राम नाम जपो।"

"जब जब मुझ पर विकट प्रसंग आये हैं मैंने राम नाम लिया है और मैं बच गया हूँ। अनेक संकटों से राम नाम ने मेरी रक्षा की है।"

"ईश्वर न काबा में है, न काशी में। वह तो घर घर में व्याप्त है, हर दिल में मौजूद है।"

"[illegible] के [illegible] अगणित हैं, क्योंकि उसकी विभूतियाँ अगणित हैं। [illegible] मुझे आश्चर्य चकित तो करती हैं, मुझे जरा भर के लिये मुग्ध भी करती हैं, पर मैं तो सत्य का पुजारी हूँ: सत्य रूपी परमेश्वर का। मेरी दृष्टि में वही एक मात्र सत्य है, दूसरा सब कुछ मिथ्या है।"

"मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि [illegible] दिन व्यतीत हो सकते हैं; परन्तु प्रार्थना बिना एक क्षण भी नहीं।"

"मैं राम नाम के बल पर ही इतना अधिक परिश्रम इस [illegible] में भी कर सकता हूँ।"

"राम नाम जपने के लिये हृदय की पवित्रता [illegible] परन्तु इसका यह आशय न समझो कि जब तक हृदय पवित्र न हो जाय, नाम-जप न करो।"

"राम नाम के अनवरत जप से ही हृदय शुद्ध होता है।"

"जीवन के प्रत्येक क्षण के [illegible] से मैं कहता हूँ कि चाहे

जीवन का अन्त हो जावे, नाम जप बन्द नहीं हो सकता। प्रत्येक नामोच्चार से हम ईश्वर के निकट पहुँचते हैं।"

"मैं चाहता हूँ कि भारत इस बात का अनुभव करे कि उसकी अपनी एक आत्मा है, जो नष्ट नहीं की जा सकती और जो समस्त संसार के भौतिक संगठन की अवज्ञा कर सकती है। एक मानव प्राणी राम का, बन्दरों की सेना लेकर, दस सिर वाले और समुद्र की गर्जन वाली लहरों के बीच अपनी लंका को सुरक्षित समझने वाले रावण की उद्धत शक्ति से लोहा लेने का और क्या अभिप्राय हो सकता है? क्या इसका अर्थ आध्यात्मिक शक्ति द्वारा शरीर-बल की पराजय नहीं है?"

"धर्म मुझे प्रिय है और मेरी सब से पहली शिकायत यह है कि भारत धर्महीन होता जा रहा है। यहाँ मैं हिन्दू या मुसलमान या पारसी धर्म का विचार नहीं कर रहा हूँ बल्कि उस धर्म का विचार कर रहा हूँ जो सब धर्मों के मूल में है। हम परमात्मा से विमुख होते जा रहे हैं।"

"मैं यह निश्चय पूर्वक अनुभव करता हूँ कि जहाँ मेरे चारों ओर की प्रत्येक वस्तु सदा परिवर्तनशील तथा सदा नाशवान है वहाँ इस समस्त परिवर्तन के मूल में एक सजीव शक्ति है जो निर्विकार है, जो सबको धारण किये हुये है, जो सृष्टि की रचना करती है, प्रलय करती है और फिर रचना करती है। यह ज्ञानदाता शक्ति चैतन्य ही परमात्मा है।"

"मैं यह पसन्द करूँगा कि भारतवर्ष अपने गौरव की रक्षा

के लिये शस्त्रों का सहारा ले, बजाय इसके कि वह कायरता के साथ स्वयं अपने ही गौरव को असहाय की भांति मिट्टी में मिलता देखे।"

"यदि हम कष्ट सहिष्णुता के बल से अर्थात् अहिंसा से अपनी, अपनी स्त्री जाति की तथा अपने देवालयों की रक्षा नहीं कर सकते तो, यदि हम मनुष्य हैं तो, हममें कम से कम लड़कर इनकी रक्षा करने की योग्यता होनी चाहिये।"

"जैसे-जैसे ईश्वर पर आस्था बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे कर्तव्य-कर्म में रस बढ़ता जाता है, जानकारी बढ़ती जाती है, सावधानी बढ़ती जाती है और उसी के साथ निश्चिन्तता और धीरज बढ़ता जाता है, यह मेरा अनुभव दृढ़ होता जाता है।"

"मेरी श्रद्धा अमर्यादित है, इसलिये मैं यह मानता हूँ कि छोटा बड़ा सब कुछ ईश्वर ही कराता है। वह यह किस तरह कराता होगा यह मैं नहीं जानता। मगर जिसने तन, मन और धन यानी सर्वस्व उसे सौंप दिया है, वह यह मानता हो कि वह खुद कुछ कर रहा है तो कहा जायगा कि वह चोर बन गया है। एक भी काम मैं करता हूँ ऐसा मूर्च्छा में मानकर मैं पाप नहीं कमाऊँगा।"

"भक्त के पापों को भगवान क्षमा करता है। शास्त्र की भाषा में इसका अर्थ यह है कि भक्त जब भगवान में लीन हो जाता है, तब शुद्ध होता है। शुद्ध होना पाप का क्षय ही है, जैसे सुवर्ण में से कुधातु का निकलना।"

"परमेश्वर और प्रकृति एक ही वस्तु है। देवता परमेश्वर की एक शक्ति है। उसकी उपासना से भी अन्त में परमेश्वर तक पहुँचा जा सकता है।"

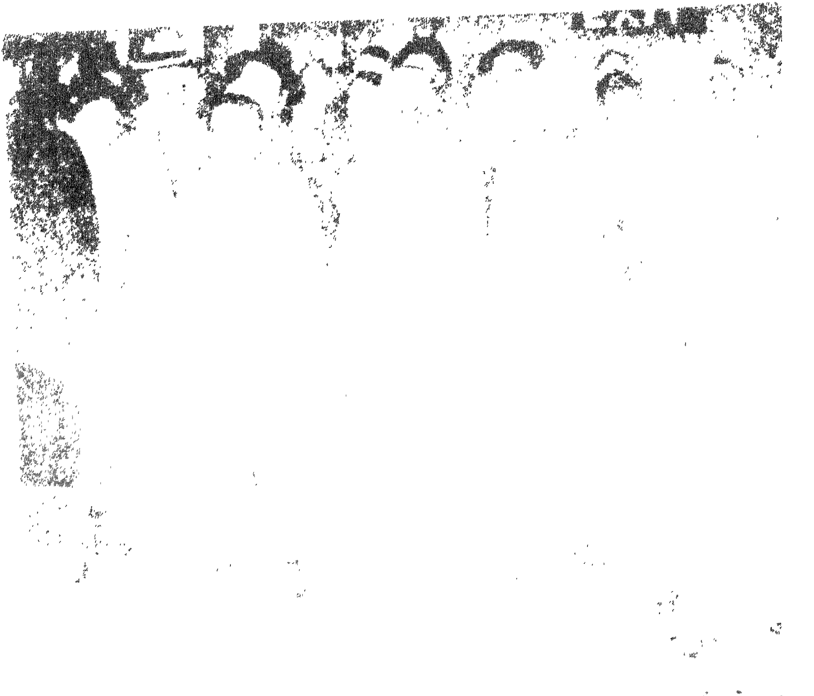
"प्रार्थना में बैठकर भी जो भजनादि में भाग नहीं लेता वह असत्य आचरण करता है।"

"ईश्वर अपने भक्तों को रास्ता दिखाता है। जो ईश्वर का नाम तक नहीं लेता, उसे याद तक नहीं करता, उसे भी ईश्वर रास्ता दिखाता है यह कैसे कहा जा सकता है? हम सब अमुक संस्कारों के साथ जन्म लेते हैं, उनके अनुसार हमें बुद्धि सूझती है। इन संस्कारों को मिटाने की शक्ति ईश्वर ने सब को दी है। इसका जो उपयोग करेगा, वह इनको मिटा सकता है।"

"प्रार्थना में मन की स्थिरता अभ्यास से ही आ सकती है। प्रार्थना करने के समय ऐसा चिंतवन करना कि जैसे शरीर के लिये अन्न आवश्यक है, उससे भी अधिक प्रार्थना आत्मा के लिये आवश्यक है। ऐसा चिंतवन करके प्रार्थना में बैठने से थोड़े ही दिनों में आनन्द आ जायगा। राम नाम का विस्मरण ही सबसे बड़ा दुःख है, ऐसा विश्वास रखने से नाम स्मरण स्थायी हो जायगा। असत्य सबसे बड़ा पातक है ऐसा विश्वास रखने से और असत्य से कुछ क्षणिक लाभ मिल जाय तो उसका त्याग करने से सत्य सहज प्रिय हो जायगा।"

"सत्य के अतिरिक्त और कोई ईश्वर नहीं और इसे मैं मूक जनता के हृदय में पाता हूँ। मैं उसी की सेवा करता हूँ।"

प्रार्थना



श्रीनिकेतन वार्षिकोत्सव के अवसर पर विद्यालय में वहाँ के एक गाँव के पा
पुस्तकालय में एक लड़का । और एक साथियों को विज्ञान की बातें
दिखलाई जा रही हैं

"प्रार्थना प्रातःकाल की कुंजी है और सायंकाल की चटखनी।"

"भगवान हमें अपंग के रूप में हमेशा दर्शन देते हैं।"

"यदि आपका विश्वास अपनी आत्मा, ईश्वर और प्रार्थना पर नहीं है तो अहिंसा काम आनेवाली नहीं है।"

"अच्छाई से अच्छाई की सृष्टि होती है। प्रतिक्रिया तथा बदले की भावना ईश्वर पर छोड़ देना चाहिये।"

"प्रार्थना क्लेशित आत्मा का गंभीर नाद है।"

"प्रार्थना पश्चाताप का एक चिन्ह है।"

"प्रार्थना हमारे अधिक अच्छे, अधिक शुद्ध होने की आतुरता को सूचित करता है।"



(पू० महात्माजी का हस्ताक्षर)

—: ० :—

पूज्य महात्माजी की दैनिक प्रार्थना

प्रातःकाल की प्रार्थना

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥१॥

१. इस जगत् में जो कुछ भी जीवन है वह सब ईश्वर का बसाया हुआ है । इसलिए तू ईश्वर के नाम से त्याग करके यथाप्राप्त भोग किया कर । किसी के धन की वासना न कर ।

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
ये स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः ॥२॥

२. प्रातःकाल अपने हृदय में स्फुरित आत्मतत्त्व का मैं स्मरण करता हूँ । वह आत्मतत्त्व सद्रूप, ज्ञानरूप और सुखरूप है । परमहंसों की वह परमगति है । वह चतुर्थपद है । स्वप्न, जागृति और निद्रा इन तीनों अवस्थाओं को वह निरन्तर जानता है । वह आत्मतत्त्व शुद्ध ब्रह्म है । और मैं वही आत्मतत्त्व हूँ; पंचमहाभूतों से बना हुआ यह शरीर मैं नहीं हूँ ।

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।

यन्नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचु-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥३॥

३. जो मन और वाणी के लिए अगोचर है, जिसकी कृपा से चारों वाणियाँ (परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी) प्रवर्तित होती हैं, जिसका वर्णन वेद भी 'वह यह नहीं, वह यह नहीं' इस प्रकार से ही कर सकते हैं, उस ब्रह्म को प्रातःकाल उठकर मैं भजता हूँ। ऋषियों ने उसे देवों का देव, अजन्मा, पतन-रहित और आदि-स्वरूप कहा है।

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै ॥४॥

४. अन्धकार से परे सूर्य के समान, पूर्ण सनातन आधार, उस परमात्म-तत्त्व को मैं प्रातःकाल उठकर नमस्कार करता हूँ, जिसका 'पुरुषोत्तम' नाम से वर्णन किया गया है। उस अनन्त स्वरूप के भीतर यह सारा जगत् इस तरह प्रतीत होता है, जैसे रस्सी में सर्प दिखाई देता है।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥५॥

५. समुद्र जिनका वस्त्र है, पर्वत जिनके स्तन-मंडल हैं, और विष्णु जिनके स्वामी हैं, ऐसी हे भूमिमाता, तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ। मैं तुम्हें जो अपने पैर से छू रहा हूँ, मेरे इस अपराध को क्षमा करो।

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।

या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥६॥

६. जो कुन्द, चन्द्र और हिम के हार के समान गौरवर्ण हैं, जिन्होंने श्वेत वस्त्र धारण कर रखे हैं, जिनका हाथ वीणा के सुन्दर दण्ड से सुशोभित है, जो श्वेत कमल के ऊपर विराजमान हैं, ब्रह्मा, शिव आदि सर्वदेव जिनकी सदा स्तुति करते हैं, वे समस्त अज्ञान और जड़ता का नाश करनेवाली भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव शुभकार्येषु सर्वदा ॥७॥

७. जिनका मुख वक्र है, जिनका शरीर विशाल है, करोड़ सूर्यों की जैसी जिनकी कान्ति है, ऐसे हे सिद्ध-विनायक, मेरे सब शुभ कर्मों को निर्विघ्न सम्पन्न करो।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥८॥

८. गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महादेव हैं, गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं, उन श्रीगुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गं ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥९॥

९. भवभय को दूर करनेवाले, सर्वप्राणियों के एकमात्र स्वामी श्रीविष्णु भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ। उनका आकार शान्त सौम्य है। वे शेषनाग की शय्या पर सोते हैं। उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ है। सब देवों के

वे स्वामी हैं, समस्त विश्व के अधार हैं, आकाश की तरह अलिप्त हैं और मेघ के समान उनका वर्ण है। उनका शरीर कल्याणकारी है। समस्त सम्पत्ति के वे स्वामी हैं। कमल के जैसे उनके नेत्र हैं। योगीजन ध्यान द्वारा ही उन विष्णु भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्री महादेव शम्भो ॥१०॥

१०. हाथ से अथवा पैर से, वाणी से या शरीर से, कान से अथवा आँख से मैं जो कुछ अपराध करूँ, वह कर्म से हुआ हो या केवल मानसिक हो—वह अमुक कर्म करने से हुआ हो, अथवा अमुक कर्म न करने से हुआ हो, हे करुणासागर कल्याणकर श्री महादेव! उन सब अपराधों के लिये मुझे क्षमा करो।

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥११॥

११. न तो मैं राज्य की इच्छा करता हूँ, न स्वर्ग की। मोक्ष की भी मुझे इच्छा नहीं। दुःख से तप्त प्राणिमात्र की पीड़ा दूर हो बस इतना ही मैं चाहता हूँ।

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गो ब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥१२॥

१२. प्रजा का कल्याण हो, राजा न्यायशक्ति से पृथ्वी का पालन करें, गाय और ब्राह्मणों का सदा शुभ हो और सब लोग सुखी रहें।

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ।
नमोऽद्वैत-तत्त्वाय मुक्तिप्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥१३॥

१३. जगत् के कारणरूप और सत्स्वरूप हे प्रभो, तुझे नमस्कार है। सब लोगों के आश्रय हे चित्स्वरूप, तुझे नमस्कार है। मुक्ति देनेवाले हे अद्वैततत्त्व, तुझे नमस्कार है। ऐसे शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म को मेरा नमस्कार है।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥१४॥

१४. तू ही एक शरण लेने योग्य है—आश्रय-स्थान है; तू ही एक वरण करने योग्य है; तू ही जगत् का पालनहार है और अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान् है। तू ही इस सृष्टि का उत्पन्नकर्त्ता, तू ही पालनकर्त्ता और तू ही संहारकर्त्ता है, और तू ही एक, निश्चल एवं निर्विकल्प है।

भयानां भयं भीषणं भीषणानां
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैःपदानां नियन्तृ त्वमेकं
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥१५॥

१५. तू भयों का भी भयकारक है, भयंकर से भी भयंकर है; तू प्राणिमात्र की गति है और पवित्र वस्तुओं को भी पवित्र करनेवाला है। श्रेष्ठ स्थानों का तू ही एकमात्र नियन्ता है। तू परे से भी परे है और रक्षकों का भी रक्षक है।

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालंबमीशं
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥१६॥

१६. हम तेरा स्मरण करते हैं; तू जगत् का साक्षीरूप है, तुझे हम नमस्कार करते हैं। सत्स्वरूप, एकमात्र साधन, और किसी का भी आधार न लेनेवाले, संसार-सागर के नौका-रूप ईश्वर की शरण हम लेते हैं।

शायंकाल की प्रार्थना

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

इस जगत् में जो कुछ भी जीवन है वह सब ईश्वर का बसाया हुआ है। इसलिए तू ईश्वर के नाम से त्याग करके यथाप्राप्त भोग किया कर। किसीके धन की वासना न कर।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्र मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और पवन दिव्य स्तोत्रों से जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेद का गान करनेवाले मुनि, अंग, पद, क्रम और उपनिषद सहित वेदों से जिसका स्तवन करते हैं, योगी लोग ध्यानस्थ होकर ब्रह्ममय मन द्वारा जिसका दर्शन करते हैं और सुर तथा असुर जिसकी महिमा का पार नहीं पाते उस परमात्मा को नमस्कार करता हूँ।

(गीता : अध्याय २।५४-७२)

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥५४॥

५४. हे केशव ! स्थितप्रज्ञ अथवा समाधिस्थ के क्या लक्षण होते हैं ? स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता, बैठता और चलता है ?

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

५५. हे पार्थ ! जब मनुष्य मन में उठती हुई सभी कामनाओं का त्याग कर देता है और आत्माद्वारा ही आत्मा में सन्तुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीत राग भय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

५६. दुःख से जो दुखी न हो, सुख की इच्छा न रखे, और राग, भय और क्रोध से रहित हो वह स्थिर-बुद्धि मुनि कहलाता है ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

५७. सर्वत्र रागरहित होकर जो पुरुष शुभ या अशुभ की प्राप्ति में न हर्षित होता है, न शोक करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस् तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

५८. कछुआ जैसे सब ओर से अंग समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हुई कही जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

५९. देहधारी जब निराहार रहता है तब उसके विषय मन्द पड़ जाते हैं, परन्तु रस नहीं जाता। वह रस तो ईश्वर का साक्षात्कार होने से ही शान्त होता है।

यततो ह्यपि कौन्तेय ! पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

६०. हे कौन्तेय ! चतुर पुरुष के उद्योग करते रहने पर भी इन्द्रियाँ ऐसी प्रथमनशील हैं कि वे उसके मन को भी बलात्कार से हर लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

६१. इन सब इन्द्रियों को वश में रखकर योगी को मुझ में तन्मय हो रहना चाहिये, क्योंकि अपनी इन्द्रियाँ जिसके वश हैं उसकी बुद्धि स्थिर है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

६२. विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष को उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से कामना होती है, और कामना से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

६३. क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रान्त हो जाती है,

स्मृति भ्रान्त होने से ज्ञान का नाश हो जाता है, और जिसका ज्ञान नष्ट हो गया वह मृतक तुल्य है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

६४. परन्तु जिसका मन अपने अधिकार में है और जिसकी इन्द्रियाँ रागद्वेषरहित होकर उसके वश में रहती है वह मनुष्य इन्द्रियों का व्यापार चलाते हुए भी चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

६५. चित्त प्रसन्न रहने से उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं। जिसे प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है, उसकी बुद्धि तुरन्त ही स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिर् शान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

६६. जिसे समत्व नहीं, उसे विवेक नहीं। जिसे विवेक नहीं उसे भक्ति नहीं। और जिसे भक्ति नहीं उसे शान्ति नही है। और जहाँ शान्ति नहीं, वहाँ सुख कहाँ से हो?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥

६७. विषयों में भटकनेवाली इन्द्रियों के पीछे जिसका मन दौड़ता है उसका मन, जैसे वायु नौका को जल में खींच ले जाता है वैसे ही, उसकी बुद्धि को जहाँ चाहे वहाँ खींच ले जाता है।

तस्माद्यस्य महाबाहो ! निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

६८. इसलिए हे महाबाहो ! जिसकी इन्द्रियाँ चारों ओर के विषय से निकलकर अपने वश में आ जाती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

६९. जब सब प्राणी सोते रहते हैं, तब संयमी जागता रहता है। जब लोग जागते हैं, तब ज्ञानवान मुनि सोता रहता है।

आपूर्यमाणम् अचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

७०. नदियों के प्रवेश से भरते रहने पर भी जैसे समुद्र अचल रहता है, वैसे ही जिस मनुष्य में संसार के भोग शान्त हो जाते हैं वही शान्ति प्राप्त करता है, न कि कामनावाला मनुष्य।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिम्अधिगच्छति ॥७१॥

७१. सब कामनाओं का त्याग करके जो पुरुष इच्छा, ममता और अहंकार रहित होकर विचरता है, वही शान्ति पाता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ ! नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

७२. हे पार्थ ! ईश्वर को पहचाननेवाले की स्थिति ऐसी होती है। उसे पाने पर फिर वह मोह के वश नहीं होता और यदि मृत्युकाल में भी ऐसी ही स्थिति टिकी रहे, तो वह ब्रह्म निर्वाण पाता है।

एकादश व्रत

अहिंसा सत्य अस्तेयं ब्रह्मचर्य असंग्रह ।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ॥
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना ।
हीं एकादश सेवावीं नम्रत्वें व्रतनिश्चये ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, अभय, सब धर्मों के प्रति समानता, स्वदेशी और अस्पृश्यता-निवारण, इन ग्यारह व्रतों का सेवन नम्रता पूर्वक व्रत के निश्चय से करना चाहिये ।

पूज्य महात्मा गांधीजी के प्रिय भजन

(राग खमाज)

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड पराई जाणे रे;
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे ।
सकल लोकमां सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे ;
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे ।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे ;
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे ।
मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे ;
रामनामशुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे ।
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे ;
भणे 'नरसैयो' तेनुं दरसन करतां, कुल एकोतेर तार्या रे ॥

प्रार्थना



गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिये पूज्य महात्मा जी और मालवीयजी एस० एस० राजपूताना नामक जहाज से विलायत गये थे। जहाज के अपने केबिन में मालवीय जी महाराज सो रहे थे। महात्मा जी ने चर्खा चलाकर उनकी

(राग छाया खमाज)

हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जोने ;
परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वलती लेवुं नाम जोने ।
सुत वित दारा शीश समरपे, ते पामे रस पीवा जोने ;
सिंधु मध्ये मोती लेवा मांही पड्या मरजीवा जोने ।
मरण आंगमे ते भरे मूठी, दिलनी दुग्धा वामे जोने ;
तीरे ऊभा जुए तमाशो, ते कोडी नव पामे जोने ।
प्रेमपंथ पावकनी ज्वाला, भाली पाछा भागे जोने ;
मांही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने ।
माथा साटे मोंघी वस्तु, सांपडवी नहि सहेल जोने ;
महापद पाम्या ते मरजीवा, मूकी मननो मेल जोने ।
राम-अमलमां राता माता, पूरा प्रेमी परखे जोने ;
'प्रीतम' ना स्वामीनी लीला, ते रजनीदिन नरखे जोने ।

(राग भैरवी)

मंगल मंदिर खोलो
दयामय ! मंगल मंदिर खोलो ।
जीवनवन अति वेगे वटाव्युं,
द्वार ऊभो शिशु भोलो ,
तिमिर गयुं ने ज्योति प्रकाश्यो,
शिशुने उरमां लो लो ।
नाम मधुरतम रट्यो निरंतर,

शिशु सह प्रेम बोलो,
दिव्यतृषातुर आव्यो बालक,
प्रेम-अमीरस ढोलो।

(राग भैरवी)

लिये चलो ज्योतिर्मय ! मुझको सघन तिमिर से लिये चलो।
रात अन्धेरी, गेह दूर है, मुझे सहारा दिये चलो॥

थामो ये मेरे डगमग पग,
दूर दृश्य चाहे न लखें दृग—
मुझे अलं है देव ! एक डग,

कभी न मैंने निस्सहाय हो माँगा—"मुझको लिये चलो।"
निज पथ आप खोजता-लखता, पर तुम अब तो लिये चलो !
लिये चलो ज्योतिर्मय ! मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !

प्यारा था मुझको जगमग दिन,
हेय मुझे थे ये भय अनगिन,
अहंकार से गया सभी छिन,

मेरे पिछले जीवन को प्रिय ! मन में रखकर अब न छलो।
लिये चलो, ज्योतिर्मय ! मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !

जबतक है तेरा बल सिर पर,
हूँगा मैं गतिशील निरन्तर,
बीहड़ दलदल, शैल-प्रलय पर,

तब तक, जब तक रात अंधेरी, रम्य उषा में आ बदलो।

चिरप्रिय खोये देवदूत वे, मुसकाते फिर मुझे मिलो।
लिये चलो ज्योतिर्मय! मुझको सघन तिमिर से लिये चलो॥

(राग भूपाली)

गाइये गनपति जग-बन्दन,
शंकर-सुवन भवानी-नन्दन।
सिद्धिसदन गजबदन विनायक,
कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक।
मोदक-प्रिय मुद मंगल-दाता,
विद्या-वारिधि, बुद्धि विधाता।
माँगत 'तुलसिदास' कर जोरे।
बसहिं रामसिय मानस मोरे॥१॥

(राग भैरवी)

भज मन राम-चरण सुखदायी।
जेहि चरनन से निकसी सुरसरी, शंकर-जटा समाई।
जटाशंकरी नाम पञ्यो है, त्रिभुवन तारन आई॥
जिन चरनन की चरन पादुका, भरत रह्यो लवलाई।
सोइ चरन केवट धोइ लीन्ह्यो, तब हरि नाव चलाई॥
जाहि चरन संतनजन सेवत, सदा रहत सुखदाई।
सोइ चरन गौतम ऋषि-नारी, परसि परम-पद पाई॥
दंडकबन प्रभु पावन कीन्हों, ऋषियन त्रास मिटाई।
सोइ प्रभू त्रिलोक के स्वामी, कनक-मृगा संग धाई॥

कपि सुग्रीव बन्धु-भय व्याकुल, तिन जय छत्र धराई।
रिपु को अनुज विभीषण निशचर, परसत लङ्का पाई॥
शिव-सनकादिक अरु ब्रह्मादिक, शेष सहस मुख गाई।
'तुलसिदास' मारुत सुत की प्रभु, निज मुख करत बड़ाई॥

(राग धनाश्री)

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग,
केहि अति दीन पियारे॥
कौने देव बराइ बिरद-हित,
हठि-हठि अधम उधारे।
खग, मृग, व्याध, पषान, विटप जड़
जवन कवन सुर तारे॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब
माया-बिबस बिचारे।
तिनके हाथ 'दास तुलसी' प्रभु
कहा अपनपौ हारे॥

(राग काफी)

ऐसो को उदार जग माहीं ?
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर,
राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग बिराग जतन करि

नहिं पावत मुनि ग्यानी ।
सो गति देत गीध सवरी कहँ,
प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो सम्पति दससीस अरपि करि,
रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो सम्पदा विभीषन कहँ अति
सकुच-सहित हरि दीन्हीं ॥
'तुलसिदास' सब भाँति सकल सुख,
जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काम सब पूरन
करहिं कृपानिधि तेरो ॥

(राग खमाज)

जाके प्रिय न राम-वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरीसम, जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुदमंगलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँलौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँलों ॥
'तुलसी' सो सब भाँति परमहित, पूज्य प्रानतें प्यारो ।
जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ॥

(राग केदार)

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
तुमसौं कहा छिपी करुनामय, सब के अन्तरजामी ॥
जो तन दियो ताहि बिसरायौ, ऐसौ नौन-हरामी ।
भरि-भरि उदर बिषै कौं धावत, जैसे सूकर ग्रामी ॥
सुनि सतसंग होत जिय आलस, विषयनि सँग बिसरामी ।
श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखन की, निसिदिन करत गुलामी ॥
पापी परम अधम अपराधी, सब पतितवन में नामी ।
'सूरदास' प्रभु अधम-उधारन, सुनियै श्रीपति स्वामी ॥

(राग आसावरी)

छाँड़ि मन, हरि-विमुखन कौ संग ।
जिनके संग कुबुधि उपजति है, परत भजन में भंग ॥
कहा होत पय-पान करायें, बिष नहिं तजत भुजंग ।
कागहिं कहा कपूर चुनायें, स्वान न्हवायें गंग ॥
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग ।
गज कों कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खहि छंग ॥
पाहन पतित बाँन नहिं बेधत, रीतो करत निषंग ।
'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग ॥

(राग वागेश्वरी)

अब कैसे छूटे नाम-रट लागी ॥टेक॥
प्रभुजी, तुम चन्दन, हम पानी ।

जाकी अँग-अँग बास समानी ॥
प्रभुजी, तुम घन बन, हम मोरा।
जैसे चितवत चंद चकोरा ॥
प्रभुजी, तुम दीपक, हम बाती।
जाकी जोति बरै दिन राती ॥
प्रभुजी, तुम मोती हम धागा।
जैसे सोनहि मिलत सुहागा ॥
प्रभुजी, तुम स्वामी, हम दासा।
ऐसी भगति करै 'रैदासा' ॥

(राग बहार)

अब हौं कासों बैर करौं।
कहत पुकारत प्रभु निज मुखतें, घटघट हौं बिहरौं ॥
आपु समान सबै जग लेखौं, भक्तन अधिक डरौं।
'श्रीहरिदास' कृपातें हरि की, नित निर्भय विचरौं ॥

(राग शंकरा)

काहे रे, बन खोजन जाई।
सर्वनिवासी सदा अलेपा, तो ही संग समाई ॥
पुहुप मध्य ज्यों बास बसतु है, मुकुरि माँहि ज्यों छाई।
तैसे ही हरि बसैं निरन्तर, घट ही खोजो भाई ॥
बाहर भीतर एकहि जानो, यह गुरु ज्ञान बताई।
जन 'नानक' बिनु आपा चीन्हें मिटै न भ्रम की काई ॥

(राग शंकरा)

बिसर गई सब तात पराई,
जबते साधु-संगति हम पाई ॥
ना कोई बैरी नाहिं बेगाना,
सकल संग हमरी बनि आई ॥
जो प्रभु कीन्हों सो भल मान्यों,
यहै सुमति साधुन ते पाई ।
सब मँह रमि रहिया प्रभु एकै,
पेखि-पेखि 'नानक' बिगसाई ॥

(राग गौरी)

अंखियाँ हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यौ चाहत कमल नयन को,
निसिदिन रहत उदासी ॥
आये ऊधो फिरि गये आंगन,
डारि गये गर फांसी ।
केसरि-तिलक मोतिन की माला,
बृन्दाबन को बासी ॥
काहू के मन की कोऊ नहिं जानत,
लोगन के मन हांसी ॥
'सूरदास' प्रभु ! तुमरे दरस बिन,
लेहौं करवट काशी ॥

दो महान आत्माओं का अन्तिम मिलन



कैबिनट मिशन के आने पर रोगशैया पर पड़े हुये महामना मालवीयजी दिल्ली जाने से अपने को न रोक सके। पूज्य महात्माजी दिल्ली में मालवीयजी से मिलने गये। यह चित्र उसी समय का है। वह सम्मिलन ही इन दो महान आत्माओं और स्नेहियों का अन्तिम मिलन था।

(राग काफी)

ऊधो कर्मन की गति न्यारी ।

सब नदियाँ जल भरि भरि रहियाँ, सागर केहि बिधि खारी ॥

उज्वल पंख दिये बगुला को, कोयल केहि गुन कारी ।

सुन्दर नयन मृगा को दीन्हे, बन बन फिरत उघारी ॥ उधो···

मूरख मूरख राजे कीन्हें, पंडित फिरत भिखारी ।

'सूरश्याम' मिलने की आशा, छिन छिन बीतत भारी ॥ ऊधो···

(राग बिहाग)

वृच्छन से मत ले, मन तू वृच्छन से मत ले ।

काटे वाको क्रोध न करहीं, सिंचत करहिं न नेह ॥ वृच्छन···

धूप सहत अपने सिर ऊपर, और को छाँह करेत ।

जो वाही को पथर चलावे, ताही को फल देत ॥ वृच्छन···

धन्य धन्य ये पर उपकारी, वृथा मनुज की देह ।

'सूरदास' प्रभु कहँ लगि बरनौं, हरिजन की मत ले ॥ वृच्छन···

(राग भीमपलासी)

सब तें ऊँची प्रेम-सगाई ।

दुरजोधन के मेवा त्यागे, साग बिदुर-घर खाई ॥

जूँठे फल सबरी के खाये, बहु बिधि स्वाद बताई ।

प्रेम के बस नृप-सेवा कीन्हीं, आप बने हरि नाई ॥

राजसु-जग्य जुधिष्ठर कीन्हों, तामें जूँठ उठाई ।

प्रेम के बस पारथ-रथ हाँक्यो, भूलि गये ठकुराई ॥

ऐसी प्रीति बढ़ी वृन्दाबन, गोपिन नाच नचाई।
'सूर' कूर इहि लायक नाहीं, कहँ लगि करौं बड़ाई॥

(राग दरबारी कान्हरा)

घूँघट का पट खोल रे,
तोहें राम मिलेंगे।
घट-घट रमता राम रमैया,
कटुक बचन मत बोल रे॥
रंगमहल में दीप बरत है,
आसन सों मत डोल रे।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो,
अनहद बाजत ढोल रे॥

(राग कलिंगड़ा)

मन लाग्यो है यार फकीरी में॥
जो सुख पावों नाम-भजन में,
सो सुख नाहिं अमीरी में।
भला बुरा सबका सुनि लीजै,
करि गुजरान गरीबी में॥
प्रेमनगर में रहनि हमारी,
भली बनि आई सबूरी में।
हाथ में कूँड़ी बगल में सोंटा,
चारों दिसि जागीरी में॥

आखिर यह तन खाक मिलैगा,
कहा फिरत मगरूरी में।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो,
साहब मिलै सबूरी में॥

(राग काफी)

राम-नाम रस पीजै,
मनुआँ राम-नाम-रस पीजै।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित,
हरि-चरचा सुनि लीजै॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ,
बहा चित्त सों दीजै।
'मीरां' के प्रभु गिरधर नागर,
ताहि के रंग में भीजै॥

(राग आसा)

मैं गोविन्द-गुण गाणा
राजा रूठै नगरी राखै,
हरि रूठ्यां कहँ जाणा।
राणा भेज्या जहर-पियाला,
इमिरत कर पी जाणा॥
डबिया में भेज्या नाग भुजंगम,
सालिगराम कर जाणा।

'मीरां' तो अब प्रेम-दीवानी,
साँवलिया बर पाणा ।

(राग झिंझोटी)

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर-मुकुट, मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु, आपनो न कोई ॥
छाँड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई ।
सन्तन ढिग बैठि-बैठि, लोक-लाज खोई ।
चुनरी के किये टूक, ओढ़ लीन्ही लोई ।
मोती मूँगे उतारि, बनमाला पोई ॥
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम-बेलि बोई ।
अब तो बेलि फैल गई, आणद-फल होई ॥
दूध की मथनिया बड़े, प्रेम से बिलोई ।
माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पिये कोई ॥
भगति देखि राजी भई, जगत देखि रोई ।
दासी 'मीरां' लाल गिरधर, तारो अब मोही ॥

(राग पूर्वी)

नहि ऐसो जनम बारम्बार ।
क्या जानूँ कुछ पुन्य प्रगटे, मानुसा अवतार ॥
बढ़त पल पल, घटत छिन छिन, चलत न लागे बार ।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, लागे नहि धुनि डार ॥

भवसागर अति जोर कहिये, विषम ओखी धार ।
सुरत का नर बाँधे बेड़ा, वेगि उतरे पार ॥
साधु संता ते महंता, चलत करत पुकार ।
दास मीरा लाल गिरधर जीवना दिन चार ॥

(राग अड़ाना)

हरि ! तुम हरो जन की भीर ।
द्रौपदी की लाज राखो, तुम बढ़ायो चीर ॥१॥
भक्त कारन रूप नरहरि, धर्‌यो आप शरीर ॥२॥
हरिनकश्यप मार लीन्हों, धर्‌यो नाँहिन धीर ॥३॥
बूड़ते गजराज राख्यो; किये बाहर नीर ॥४॥
दास मीरा लाल गिरधर, दुख जहाँ तहाँ पीर ॥५॥

(राग मांड)

म्हाँने चाकर राखो जी ।
गिरधारी लाला ! चाकर राखोजी ॥ टेक ॥
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरशन पासूँ ।
बृन्दावन की कुंज गलिन में, गोविन्द लीला गासूँ ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजन्ती माला ।
बृन्दावन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला ॥२॥
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच राखूँ बारी ।
साँवरिया के दरशन पाऊँ, पहिर कुसुम्बी सारी ॥३॥
जोगी आया जोग करन को, तप करने सन्यासी ।

हरी भजन को साधू आये, बृन्दावन के बासी ॥४॥
मीरां के प्रभु गहिर गंभीरा, हृदय रहोजी ,धीरा ।
आधी रात प्रभु दरशन दीन्हों, प्रेम-नदी के तीरा ॥५॥

(राग मांड)

माई मैंने गोविन्द लीन्हों मोल । गोविन्द लीनो मोल ॥ध्रु॥
कोई कहे सस्ता, कोई कहे मँहगा, लीनो तराजू तोल ॥१॥
कोई कहे घर में, कोई कहे बनमें, राधा के संग खिलोल ॥२॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आवत प्रेम के डोल ॥३॥

(राग बागेश्री)

सबै दिन होत न एक समान ।
एक दिन राजा हरिश्चन्द्र गृह, संपति मेरु समान ।
एक दिन जाय स्वपच गृह सेवत, अंबर हरत समान ॥१॥
एक दिन दूल्हा बनत बराती, चहुँ दिसि गड़त निसान ।
एक दिन डेरा होत जंगल में, कर मूधे पग तान ॥२॥
एक दिन सीता रुदन करत है, महाविपिन उद्यान ।
एक दिन रामचन्द्र मिलि दोऊ, विचरत पुष्प विमान ॥३॥
एक दिन राजा राज युधिष्ठर, अनुचर श्री भगवान ।
एक दिन द्रौपदी नगन होत हैं, चीर दुशासन तान ॥४॥
प्रगटत है पूरब की करनी, तज मन सोच अजान ।
सूरदास गुन कँह लागि बरनौं, विधि के अंक प्रमान ॥५॥

—:०:—

भारत की दो महान विभूतियाँ, विश्ववन्द्य महात्मा गांधी
तथा महर्षि [illegible] महाराज का सम्मिलन ।

(राग [illegible] ताल)

[illegible] नहीं जग । कौन दिनाह करै नव नेरो ॥ध्रु०॥

सूरज, मंगल, सोम, भृगुसुत । बुध अरु गुरु [illegible] तेरो ।
राहु केतुकी नाहिं गम्यता । संग शनीचर होत उचेरो ॥१॥
दुष्ट [illegible] विलम्ब द्रौपदी । चीर [illegible] कुलनाम ग्रेरो ।
जाकी सहाय करी [illegible] । बढ़ [illegible] सागर घनेरो ॥२॥
गर्भमें राख्यो परीक्षित राजा । [illegible] जब अस्त्र प्रेरो ।
भारतमें भरुही के अंडा । ता पर गजका घंटा गेरो ॥३॥
जाकि सहाय करी [illegible] । ताके जगतमें भाग बड़ेरो ।
रघुवंशी संतन [illegible] चेरो ॥४॥

(राग [illegible] ताल)

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते ॥१॥
सहसबाहु [illegible] आदि नृप, बचे न काल बली ते ।
हम, हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥२॥
[illegible] जानि [illegible], न करु नेह सब ही तें ।
अंतहु तोहिं तजेंगे, पामर ! तू न तजै अब ही तें ॥३॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जी तें ।
बुझै न [illegible] 'तुलसी' कहुँ, [illegible] बहु घी तें ॥४॥

(राग खमाज विलंबित)

अबतो प्रगट भई जग जानी ।
वा मोहन सों प्रीति निरन्तर

नाहिं रहेगी छानी ।।ध्रु०।।
कहा कहौं सुन्दर मूरत इन,
नयनन माहिं समानी ।
निकसत नाहिं बहुत पचिहारी,
रोम रोम उरझानी ।।१।।
अब कैसे निर्वार जात है,
मिले दूध ज्यौं पानी ।
'सूरदास' प्रभु अन्तर्यामी,
ग्वालिन मन की जानी ।।

(राग गौड़ सारंग)

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।
रामकृपा भवनिशा सिरानी, जागे फिर न नसैहौं ।।
पायो नाम चारू चिंतामनि, उर करतें न खसैहौं ।
श्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ।
परवस जानि हँस्यौ इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हसैहौं
मन मधुपहि प्रन करि, 'तुलसी', रघुपति-पद-कमल बसैहौं ।

(राग दुर्गा-ताल केरवा)

रे मन ! रामसों कर प्रीति ।।ध्रु०।। श्रवण गोविन्द गुण सुनो,
अरु गाउ रसना गीत ।।१।। कर साधुसंगत, सुमिर माधो,
होय पतित पुनीत ।।२।। काल व्याल ज्यों पयों डोलै,

मुख पसारे मीत ॥३॥ आजकल पुनि तोहिं ग्रसिहै, समझ राखो चीत ॥४॥ कहे 'नानक' राम भज ले, जात अवसर बीत ॥५॥

(राग पीलू)

रघुवर ! तुमको मेरी लाज ।
सदा सदा मैं शरण तिहारी, तुम बड़े गरीब निवाज ॥
पतित उधारन विरद तिहारो, स्रवनन सुनी अवाज ॥
हौं तो पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज ॥
अघ खंडन, दुख भंजन जन के, यही तिहारो काज ॥
'तुलसिदास' पर किरपा करिये, भक्तिदान देहु आज ॥

(राग काफी)

अबकी टेक हमारी । लाज राखो गिरधारी ॥ ध्रु० ॥
जैसी लाज राखो अर्जुन की, भारत युद्ध मंझारी ।
सारथि ह्वै के रथ को हांक्यो, चक्र सुदर्शन धारी ॥
भक्त की टेक न टारी ॥१॥
जैसी लाज राखी द्रौपदी की, होने न दीन्ह उघारी ।
खैंचत खैंचत दोउ भुज थाके, दुःशासन पचिहारी ॥
चीर बढ़ायो मुरारी ॥२॥
'सूरदास' की लज्जा राखो, अब को है रखवारी ?
राधे राधे श्रीवर प्यारो, श्री वृषभानु-दुलारी ॥
शरण तक आयो तिहारी ॥३॥

भजन की धुन

हरे राम, हरे राम, हरे राम, हरे ।
भज मन निशिदिनीं प्यारे ॥

× × +

रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम ॥
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान ॥

× × ×

नारायण नारायण जय गोविन्द हरे ।
नारायण नारायण जय गोपाल हरे ॥

× + +

राधाकृष्ण जय कुंजबिहारी, मुरलीधर गोवर्धनधारी ॥

× × ×

गोपाल राधेकृष्ण, गोविन्द गोपाल ।

× × ×

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

× × ×

राजा राम राम राम, सीता राम राम राम ॥

× × ×

पावना रामा, पतितपावना रामा ।

× × ×

रामधुन लागी, गोपालधुन लागी ।

× × ×

जय गोविन्द हरि गोविन्द
जय गोविन्द राधे गोविन्द
जय गोपाल राधे गोविन्द

× × ×

भजले, भजले, सीताराम
मंगलमूरति, सुन्दर श्याम।

× × ×

भज मन प्यारे सीताराम।

× × ×

साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव
साम्ब सदाशिव साम्बशिवा।
हर हर हर हर साम्ब सदाशिव
साम्ब सदाशिव साम्ब शिवा॥

× × ×

ओऽम् शिव ओऽम् शिव, परात परा शिवः;
ओऽम्कारा शिव, तव शरणम्।
नमामि शंकर, भवानी शंकरः;
उमा महेश्वर, तव शरणम्॥

× × ×

प्रिय-स्वामिन की जय, प्यारे राघव की जय।
बोलो हनुमान् कृपालु की जय जय जय॥

× × ×

पूज्य महर्षि मालवीयजी महाराज

ईश्वर

ईश्वर को कोई आँखों से नहीं देख सकता किन्तु हममें से हर एक मन को पवित्र कर विमल बुद्धि से ईश्वर को देख सकता है। इसलिये जो लोग ईश्वर को मन की आँखों (बुद्धि) से देखना चाहते हैं उको उचित है कि वे अपने शरीर और मन को पवित्र कर और बुद्धि को विमल कर ईश्वर की खोज करें।

हमारे सामने जन्मसे लेकर शरीर छूटनेके समयतक बड़े-बड़े चित्र-विचित्र दृश्य दिखायी देते हैं जो हमारे मनमें इस बातके जाननेकी बड़ी उत्कण्ठा उत्पन्न करते हैं कि वे कैसे उपजते हैं और कैसे विलीन होते हैं? हम प्रतिदिन देखते हैं कि प्रातःकाल पौ-फट होते ही सहस्र किरणोंसे विभूषित सूर्यमण्डल पूर्व दिशामें प्रकट होता है और आकाश-मार्गसे विचरता, सारे जगत्को प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता, सायंकाल पश्चिम दिशा में पहुँचकर नेत्रपथसे परे हो जाता है। गणितशास्त्रके जाननेवालोंने गणनाकर यह निश्चय किया है कि यह सूर्य पृथवीसे नौ करोड़ अट्ठाईस लाख तीस सहस्र मीलकी दूरीपर

है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि यह इतनी दूरीसे इस पृथिवीके सब प्राणियोंको प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता है! ऋतु-ऋतुमें सूर्य अपनी सहस्र किरणोंसे पृथवीसे जलको खींचकर आकाश में ले जाता है और वहाँसे मेघका रूप बनाकर फिर जलको पृथिवी पर बरसा देता है और उसके द्वारा सब घास, पत्ती, वृक्ष अनेक प्रकारके अन्न और धान और समस्त जीवधारियोंको प्राण और जीवन देता है। गणितशास्त्र बतलाता है कि जैसा यह एक सूर्य है ऐसे असंख्य और हैं और इससे बहुत बड़े-बड़े भी हैं जो सूर्यसे भी अधिक दूर होनेके कारण हमको छोटे-छोटे तारोंके समान दिखायी देते हैं। सूर्यके अस्त होनेपर प्रतिदिन हमको आकाशमें अनगिनत तारे-नक्षत्र-ग्रह चमकते दिखायी देते हैं। सारे जगत्को अपनी किरणोंसे सुख देनेवाला चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनीसे रात्रिको ज्योतिष्मती करता हुआ आकाशमें सूर्यके समान पूर्व दिशासे पश्चिम दिशाको जाता है। प्रतिदिन रात्रिके आते ही दशों दिशाओंको प्रकाश करती हुई नक्षत्र-तारा-ग्रहोंकी ज्योति ऐसी शोभा धारण करती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ये सब तारा ग्रह सूत में बँधे हुए गोलकोंके समान अलंघनीय नियमोंके अनुसार दिन-से-दिन, महीने-से-महीने, वर्ष-से-वर्ष, बँधे हुए मार्गोंमें चलते हुए आकाशमें घूमते दिखायी देते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि गर्मीकी ऋतुमें यदि सूर्य तीव्र रूपसे नहीं तपता तो वर्षाकालमें वर्षा अच्छी नहीं होती, यह भी प्रत्यक्ष है कि यदि वर्षा न हो

तो जगत्‌में प्राणीमात्रके भोजनके लिये अन्न और फल न हों। इससे हमको स्पष्ट दिखायी देता है कि अनेक प्रकारके अन्न और फलद्वारा सारे जगत् के प्राणियोंके भोजनका प्रबन्ध मरीचि-माली सूर्यके द्वारा हो रहा है। क्या यह प्रबन्ध किसी विवेक-वती शक्तिका रचा हुआ है जिसको स्थावर-जंगम सब प्राणियों-को जन्म देना और पालना अभीष्ट है अथवा यह केवल जड पदार्थोंके अचानक संयोगमात्रका परिणाम है? क्या यह परम आश्चर्यमय गोलक-मण्डल अपने आप जड़ पदार्थोंके एक दूसरेके खींचनेके नियममात्रसे उत्पन्न हुआ है और अपने-आप आकाशमें वर्ष-से-वर्ष, सदी-से-सदी, युग-से-युग घूम रहा है, अथवा इसके रचने और नियमसे चलानेमें किसी चैतन्य शक्ति-का हाथ है? बुद्धि कहती है कि 'है', वेद भी कहते हैं कि 'है'। वे कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमाको, आकाश और पृथिवीको परमात्माने रचा।

सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः।
(ऋग्वेद ८। ८। ४८। ३)

इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्राणात्मक जगत्‌की रचना इस बातकी घोषणा करती है कि इस जगत्‌का रचनेवाला एक ईश्वर है। यह चैतन्य जगत् अत्यन्त आश्चर्यसे भरा हुआ है। जरायुसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, सिंह, हाथी, घोड़े, गौ आदि;

अण्डोंसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी; पसीने और मैलसे पैदा होनेवाले कीड़े, पृथिवीको फोड़कर उगनेवाले वृक्ष; इन सबकी उत्पत्ति, रचना और इनका जीवन परम आश्चर्यमय है।

कौन-सी शक्ति है जो सब असंख्य प्राणवन्तों को, सब मनुष्योंको, सब पशु-पक्षियोंको, सब कीट-पतंगोंको, सब पेड़ पल्लवोंको पालती है और उनको समयसे चारा और पानी पहुँचाती है? कौन-सी शक्ति है जिससे चींटियाँ दिनमें भी और रातमें भी सीधी भीतपर चढ़ती चली जाती जाती हैं? कौन-सी शक्ति है जिससे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े पक्षी अनन्त आकाशमें दूर-से-दूर तक बिना किसी आधारके उड़ा करते हैं?

नरों और नारियोंकी, मनुष्योंकी, गौवोंकी, सिंहोंकी, हाथियोंकी, पक्षियोंकी, कीड़ोंकी, सृष्टि कैसे होती है? मनुष्योंसे मनुष्य, सिंहोंसे सिंह, घोड़ोंसे घोड़े, गौवोंसे गौ, मयूरोंसे मयूर, हंसोंसे हंस, तोतोंसे तोते, कबूतरोंसे कबूतर, अपने-अपने माता-पिताके रंग-रूप-अवयव लिये हुये कैसे उत्पन्न होते हैं? छोटे-से-छोटे बीजोंसे किसी अचिन्त्य शक्तिसे बढ़ाये हुए बड़े और छोटे असंख्य वृक्ष उगते हैं तथा प्रतिवर्ष और बहुत वर्षों तक पत्तों, फल, फूल, रस, तैल, छाल और लकड़ीसे जीवधारियोंको सुख पहुँचाते, सैकड़ों, सहस्रों स्वादु, रसीले फलोंसे उनको तृप्त करते, बहुत वर्षोंतक श्वास लेते, पानी पीते, पृथ्वीसे और आकाशसे आहार खींचते आकाशके नीचे झूमते-लहराते रहते हैं?

इस आश्चर्यमयी शक्तिकी खोजमें हमारा ध्यान मनुष्यके रचे हुए एक घरकी ओर जाता है। हम देखते हैं, हमारे सामने यह एक घर बना हुआ है। भीतर जानेके लिये एक बड़ा द्वार है। इसमें अनेक स्थानोंमें पवन और प्रकाश के लिये खिड़कियाँ तथा झरोखे हैं। भीतर बड़े-बड़े खम्भे और दालान हैं। धूप और पानी रोकनेके लिये छतें और छज्जे बने हुये हैं। दालान-दालान में, कोठरी-कोठरीमें, भिन्न-भिन्न प्रकारसे मनुष्योंको सुख पहुँचानेका प्रबन्ध किया गया है। घरके भीतरसे पानी बाहर निकालनेके लिये नालियाँ बनी हुई हैं। ऐसे विचार से घर बनाया गया है कि रहनेवालों को सब ऋतुमें सुख देवे। इस घरको देखकर हम कहते हैं कि इसका रचनेवाला कोई चतुर पुरुष था, जिसने रहनेवालोंके सुखके लिये जो-जो प्रबन्ध आवश्यक था, उसको विचारकर घर रचा। हमने रचनेवालेको देखा भी नहीं, तो भी हमको निश्चय होता है कि घरका रचनेवाला कोई था या है और वह ज्ञानवान्, विचारवान्, पुरुष है।

अब हम अपने शरीरकी ओर देखते हैं। हमारे शरीरमें भोजन करनेके लिये मुँह बना है। भोजन चबानेके लिये दाँत हैं। भोजनको पेटमें पहुँचानेके लिये गलेमें नाली बनी है। उसीके पास पवनके मार्गके लिये एक दूसरी नाली बनी हुई है। भोजनको रखनेके लिये उदरमें स्थान बना है। भोजन पचकर रुधिरका रूप धारण करता है, वह हृदयमें जाकर इकट्ठा होता है और वहाँसे सिरसे पैरतक सब नसोंमें पहुँचकर मनुष्यके सम्पूर्ण

अंगको शक्ति, सुख और शोभा पहुँचाता है। भोजनका जो अंश शरीरके लिये आवश्यक नहीं है, उसके मल होकर बाहर जानेके लिये मार्ग बना है। दूध, पानी या अन्य रसका जो अंश शरीर को पोसनेके लिये आवश्यक नहीं है, उसके निकालनेके लिये दूसरी नाली बनी हुई है। देखनेके लिये हमारी दो आँखें, सुनने के लिये दो कान, सूंघनेको नासिकाके दो रन्ध्र, और चलने-फिरनेके लिये हाथ-पैर बने हैं। हम पूछते हैं—क्या यह परम आश्चर्यमय रचना केवल जड़ पदार्थोंके संयोगसे हुई है या इसके जन्म देने और वृद्धिमें, हमारे घरके रचयिताके समान किन्तु उससे अनन्तगुण अधिक किसी ज्ञानवान्, विवेकवान्, शक्तिमान् आत्माका प्रभाव है ?

इसी विचारमें डूबते और उतारते हुये हम अपने मनकी ओर ध्यान देते हैं तो हम देखते हैं कि हमारा मन भी एक आश्चर्यमय वस्तु है। इसकी—हमारे मनकी विचारशक्ति, कल्पनाशक्ति, गणनाशक्ति, रचनाशक्ति, स्मृति, धी, मेधा सब हमको चकित करती हैं। इन शक्तियोंसे मनुष्यने क्या-क्या विज्ञान निकाले हैं, क्या-क्या आविष्कार किये हैं और कर रहे हैं। यह थोड़ा आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता। हमारी बोलने और गानकी शक्ति भी हमको आश्चर्यमें डुबा देती है। हम देखते हैं कि यह प्रयोजनवती रचना सृष्टिमें सर्वत्र दिखायी पड़ती है और यह रचना ऐसी है कि जिसके अंत तथा आदिका पता नहीं चलता। इस रचनामें एक-एक जातिके शरीरियोंके अवयव

ऐसे नियममें बैठाये गये हैं कि सारी सृष्टि शोभासे पूर्ण है। हम देखते हैं कि सृष्टिके आदिमें सारे जगत्में एक कोई अद्भुत शक्ति काम कर रही है जो सदा से चली आई है, सर्वत्र व्याप्त है और अविनाशी है।

हमारी बुद्धि विवश होकर इस बातको स्वीकार करती है कि ऐसी ज्ञानात्मिका रचना का कोई आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत्-चित्-आनंदस्वरूप, जगत्-व्यापक, अनंत-शक्ति-सम्पन्न रचयिता है। उसी एक अनिर्वचनीय शक्तिको हम ईश्वर परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम कृष्ण, विष्णु, जिहोवा, गॉड, खुदा, अल्लाह आदि सहस्त्रों नामों, से पुकारते हैं।

वह परमात्मा एक ही है।

वेद कहते हैं—'एकमेवाद्वितीयम्'

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'

'एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति'

एक ही परमात्मा है, कोई उसका दूसरा नहीं। एकहीको विप्रलोग बहुत-से नामोंसे वर्णन करते हैं। है एक ही, किन्तु उसको बहुत प्रकार से कल्पना करते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये उसी एक परमात्माकी तीन संज्ञा अर्थात् नाम हैं। विष्णुपुराण में लिखा है—

सृष्टिस्थित्यन्तकारणीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनर्दनः॥

वे एक ही जनार्दन भगवान् सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नामकी तीन संज्ञा प्राप्त करते हैं।

भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, सर्वत्र व्यापक तथा मायासे अलिप्त हैं, यह स्थावर- जंगमरूप सारा संसार उनसे व्याप्त है। उन जरारहित आदिदेवताको कोई शिव, कोई सदा सत्यस्वरूप विष्णु और कोई ब्रह्मा कहते हैं।

इसी प्रकार शिवपुराणमें स्वयं महेश्वरका वचन है—

हे विष्णो! सृष्टि, पालन तथा संहार इन तीन गुणों के कारण मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और शिवनामक तीन भेदसे युक्त हूँ। हे हरे! वास्तव में मेरा स्वरूप सदा भेदहीन है। मैं, आप, यह (ब्रह्मा) तथा रुद्र और आगे जो कोई भी होंगे, इन सबका एक ही रूप है, उनमें कोई भेद नहीं है, भेद माननेसे बन्धन होता है।

भागवतमें भी स्वयं भगवान्का वचन है—

हम, ब्रह्मा और शिव संसारके परम कारण हैं, हम सबके आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश और निर्विशेष हैं। हे ब्राह्मण वह मैं (विष्णु) अपनी त्रिगुणमयी मायामें प्रवेश करके संसार

की सृष्टि, रक्षा या प्रलय करता हुआ भिन्न-भिन्न कार्योंके अनुसार नाम धारण करता हूँ।

इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनको भिन्न-भिन्न मानना भूल है। ये एक ही परमात्माकी तीन संज्ञा हैं।

परमात्मा का रूप क्या है?

ब्रह्म सत्य है, सदा रहा है, है भी, सदा रहेगा भी। वह ज्ञानमय, चैतन्य और आनन्दस्वरूप है। उसका स्वयं शरीर नहीं है, किन्तु विनाशवान् शरीरोंमें पैठकर वह संसारकी लीला कर रहा है। वह केवल निर्मल ज्ञानस्वरूप है, पूर्ण है। उसका आदि नहीं, अंत नहीं। वह नित्य और अद्वितीय है। एक होनेपर भी अनेक रूपों में दिखायी देता है।

शरीरोंके भीतर बैठा हुआ आत्मा पुराणपुरुष साक्षात् स्वयं प्रकाश, अज, परमेश्वर, नारायण, भगवान् वासुदेव अपनी माया से अपने रचित शरीरोंमें रम रहा है।

ब्रह्मका पूर्ण और अत्यन्त हृदयग्राही निरूपण—वेद, उपनिषद् और पुराणोंका सारांश—भागवतके एकादश स्कन्धके तीसरे अध्यायमें दिया हुआ है।

राजा जनकने ऋषियोंसे कहा—'हे ऋषिगण! आपलोग ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, अतएव आप मुझे यह बताइये कि

जिनको नारायण कहते उन परब्रह्म परमात्माका ठीक स्वरूप क्या है ?"

पिप्पलायन ऋषिने कहा—'हे नृप ! जो इस विश्व के सृजन, पालन और संहारका कारण है परन्तु स्वयं जिसका कोई कारण नहीं है; जो स्वप्न, जागरण और गहरी नींदकी दशाओं में भीतर और बाहर भी वर्तमान रहता है; देह, इन्द्रिय, प्राण और हृदय आदि जिससे सञ्जीवित होकर अर्थात् प्राण पाकर अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसी परमतत्त्वको नारायण जानो। जैसे चिनगारियाँ अग्निमें प्रवेश नहीं पा सकतीं, वैसे ही मन, वाणी, आँखें, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियाँ उस परमतत्त्वका ज्ञान ग्रहण करनेमें असमर्थ हैं और वहाँतक पहुँच न सकनेके कारण उसका निरूपण नहीं कर सकतीं।

वह परमात्मा कभी जन्मा नहीं, न वह कभी मरेगा, न वह कभी बढ़ता है और न घटता है; जन्म-मरण आदिसे रहित वह सब बदलती हुई अवस्थाओंका साक्षी है एवं सर्वत्र व्याप्त है, सब कालमें रहा है और रहेगा, अविनाशी है और ज्ञानमात्र है। जैसे प्राण एक है तो भी इन्द्रियों के भिन्न होने से आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, नाक सूँघती है इत्यादि भावों के कारण एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं, ऐसे ही आत्मा एक होने पर भी भिन्न-भिन्न देहों में अवस्थित होने के कारण भिन्न प्रतीत होता है।

जितने जीव जरायु से उत्पन्न होते हैं—मनुष्य, गौ, घोड़े, हाथी, सिंह, कुत्ते, भेड़, बकरी आदि, जो पक्षीवर्ग अण्डों से उत्पन्न होते हैं, जो कीटवर्ग पसीने, मैल आदिसे उत्पन्न होते हैं और जो वृक्षवर्ग (पेड़-विटप) पृथ्वी को फोड़कर उगते हैं, इन सबों में-सम्पूर्ण सृष्टि में-जहाँ-तहाँ जीवके साथ प्राण दौड़ता हुआ दिखायी देता है, वहाँ-वहाँ ब्रह्म है। जब सब इन्द्रियाँ सो जाती हैं, जब 'मैं हूँ' यह अहंभाव भी लीन हो जाता है, उस समय जो निर्विकार साक्षीरूप हमारे भीतर बैठा हुआ ध्यान में आता है और जिसका हमारे जागने की अवस्था में 'हम अच्छे सोये' 'यह सपना देखा' इस प्रकार की स्मृति होती है वही ब्रह्म है इत्यादि।

यह ब्रह्म कहाँ है ?

वेद कहते हैं—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

(श्वेता० ६। ११)

एक ही परमात्मा सब प्राणियों के भीतर छिपा हुआ है, सबमें व्याप रहा है, सब जीवों के भीतर का अन्तरात्मा है, जो कुछ कार्य सृष्टि में हो रहा है, उसका नियन्ता है। सब

प्राणियों के भीतर बस रहा है, सब संसार के कार्यों का साक्षी रूप में देखनेवाला, चैतन्य, केवल, एक, जिसका कोई जोड़ नहीं और जो गुणों के दोषसे रहित है।

वेद, स्मृति, पुराण कहते हैं कि यह देवों का देव अग्निमें, जल में, वायुमें, सारे भुवनमें, सब ओषधियोंमें, सब वनस्पतियों में, सब जीवधारियों में व्याप रहा है।

वह परमदेव विश्वका रचनेवाला सदा प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। अपने-अपने हृदयमें स्थित इस महात्माको जो शुद्ध हृदयसे, विमल मनसे अपनेमें विराजमान देखते हैं वे अमर होते हैं।

लोकमें न उसका कोई स्वामी है, न उसके ऊपर आज्ञा चलानेवाला है, न उसका कोई चिह्न है। वही सबका कारण है, उसका कोई कारण नहीं, उसका कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं, न उसका कोई रक्षक है।

उस सब सामर्थ्य और अधिकार रखनेवालोंके सबसे बड़े परम ईश्वर, देवताओंके सबसे बड़े देवता, स्वामियोंके सबसे बड़े स्वामी, सारे त्रिभुवनके स्वामी, परम पूजनीय देवको हम-लोगोंने जाना है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

सोइ सच्चिदानन्दघन रामा। अज विज्ञानरूप बलधामा॥
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥

अगुण अदभ्र गिरा गोतीता । समदर्शी अनवद्य अजीता ॥
निर्मल निराकार निर्मोहा । नित्य निरंजन सुखसन्दोहा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी । ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी ॥
इहाँ मोहकर कारण नाहीं । रवि-सम्मुख तम कबहुँ कि जाहीं ॥

सूरदासजीने कहा है—

जगत्पिता जगके आधार ।
तुम सबके गुरु सबके स्वामी,
तुम सबहिनके अन्तर्यामी ॥
हम सेवक तुम जगत अधार,
नमो नमो तुम्हें बारंबार ।
सर्व शक्ति तुम सर्व अधार,
तुम्हें भजै सो उतरै पार ॥
घट-घट माँहि तुम्हारो वास,
सर्व ठौर जिमि दीप-प्रकास ।
एहि विधि तुमको जानै जोई,
भक्त रु ज्ञानी कहिये सोई ॥
जगत-पिता तुम ही हौ ईश,
याते हम विनवत जगदीश ।
तुमसम द्वितिय और नहिं आहि,
पटतर देहि नाथ हम काहि ॥
नाथ कृपा अब हमपर कीजै,

भक्ति आपनी हमको दीजै।
प्रेम भक्ति बिन कृपा न होइ,
सर्व शास्त्रमें देखै जोइ॥
तपसी तुमको तप करि पावैं,
मुनि भागवत गृही गुण गावैं।
कर्मयोग करि सेवत कोई,
ज्यों सेवै त्यों ही गति होई॥
तीन लोक हरि करि विस्तार,
ज्योति आपनी करि उँजियार।
जैसा कोऊ गेह सँवार,
दीपक बारि करै उँजियार॥
त्यों हरि-ज्योति आप प्रकटाई,
घट घटमें सोई दरसाई।
नाथ तुम्हारी ज्योति-अभास,
करत सकल जगको परकास॥
थावर-जंगम जहलों भये,
ज्योति तुम्हारी चेतन किये।
तुम सब ठौर सबनतें न्यारे,
को लखि सकै चरित्र तुम्हारे॥
सो प्रकाश तुम साजे सदा,
जीव कर्म करि बन्धन बँधा।
सर्वव्यापी तुम सब ठाहर,

तुमहिं दूर जानत नर नाहर ॥

तुम सबके प्रभु अन्तर्यामी,

जीव बिसर रह्यो तुमको स्वामी ॥

यह परमात्मा जीवरूपमें प्रत्येक जीवधारीके हृदयके बीचमें विराजमान है ।

ईश्वर-अंश जीव अविनाशी । चेतन अमल सहज सुखराशी ॥

स्वयं भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

(१८ । ६१)

हे अर्जुन ! ईश्वर सब जीवोंके हृदयमें रहते हैं ।

यह आत्मा मनुष्यसे लेकर पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-विटप समस्त छोटे-बड़े जीवधारियोंमें समानरूपसे विराजमान है ।

वेदव्यासजी कहते हैं—

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु ।

स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा ॥

ब्रह्मकी ज्योति अपने भीतर ही है, वह सब जीवधारियोंमें एकसम है, मनुष्य मनको अच्छी तरह शान्त और थिर कर उसीसे उसको देख सकता है ।

गीतामें स्वयं भगवान्‌का वचन है—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥
(१३ ।२७)

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥
(१३ । १७)

वही पण्डित है जो विनाश होते हुए मनुष्यों के बीचमें विनाश न होते हुए सब जीवधारियोंमें बैठे हुए परमेश्वर को देखता है ।

सब ज्योतियोंकी वह ज्योति, समस्त अन्धकारके परे चमकता हुआ, ज्ञानस्वरूप, जानने के योग्य, जो ज्ञान से पहचाना जाता है, ऐसा वह परमात्मा सबका सुहृद्, सब प्राणियों के हृदयमें बैठा है ।

ऐसे घट-घट-व्यापक उस एक परमात्माकी मनुष्यमात्र को विमल भक्ति के साथ उपासना करनी चाहिये और यह ध्यानकर कि वह प्राणीमात्र में व्याप्त है, प्राणीमात्र से प्रीति करनी चाहिये ।

सब प्राणीमात्र समान हैं

गीता में भगवान ने कहा है :—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

(गीता ५ । १८)

विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मणमें, गौ बैलमें, हाथीमें, कुत्तेमें, और चाण्डालमें पण्डित लोग समदर्शी होते हैं, अर्थात् सुख-दुःख के विषय में उनको समानभाव से देखते हैं। तथा यह भी कि—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

(गीता ६ । ३२)

जो पुरुष सबके सुख दुःखके विषयमें अपनी उपमासे समान दृष्टिसे देखता है उसको सबसे बड़ा योगी समझना चाहिये।

इसीलिये महर्षि वेदव्यासजीने कहा है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

(विष्णुधर्मोत्तर० ३ । २५५ । ४४)

न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।
एष सामासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥

(महा० अनु० ११३ । ८)

सुनो धर्मका सर्वस्व और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो अपनेको प्रतिकूल जान पड़े, जिस बातसे अपनेको पीड़ा पहुँचे, उसको दूसरों के प्रति न करो।

दूसरे के प्रति हमको वह काम नहीं करना चाहिये जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो या दुःख हो। संक्षेप में यही धर्म है, इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी बातकी कामनासे किये जाते हैं।

जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत्।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्॥

(महा० शां० ५९। २२)

जो चहता है कि मैं जीऊँ, वह कैसे दूसरेका प्राण हरने का मन करे? जो-जो बात मनुष्य अपने लिये चाहता है उसको चाहिये कि वही-वही बात औरों के लिये भी सोचे।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय धर्म, जिनका सब समय में पालन करना सब प्राणियों के लिये विहित है और जिनके उल्लंघन करने से आदमी नीचे गिरता है, इन्हीं सिद्धान्तोंपर स्थित हैं। इन्हीं सिद्धान्तोंपर वेदोंमें गृहस्थों के लिये पञ्चमहायज्ञ का विधान किया गया है कि जो भूल से भी किसी निर्दोष जीव की हिंसा हो जाय तो हम उसका प्रायश्चित्त करें। जो हिंसक जीव हैं, जो हमारा या किसी दूसरे निर्दोष प्राणी का प्राणाघात करना चाहते हैं, या उनका धन हरना या धर्म बिगाड़ना चाहते हैं, जो हमपर या हमारे देशपर, हमारे गाँवपर आक्रमण करते हैं, या जो आग लगाते हैं या किसीको विष देते हैं— ऐसे लोग आततायी कहे जाते हैं। अपने या किसी भाई या

प्रार्थना



वृद्ध वशिष्ठ मालवीयजी महाराज ।

बहिन के प्राण, धन, धर्म मानकी रक्षा के लिये ऐसे आततायी पुरुषों या जीवों का, आवश्यताके अनुसार आत्मरक्षा के सिद्धान्तपर वध करना धर्म है। निरपराधी अहिंसक जीवोंकी हिंसा करना अधर्म है।

—:o:—

पूज्य मालवीयजी महराज
की
हस्तलिपि और हस्ताक्षर

परमात्मा की स्तुति और विद्यार्थियों के कर्त्तव्य

सबसे पहला कर्त्तव्य हमारा यह है कि हम परमात्मा की स्तुति करें, उनके गुणगान करें जो विश्वम्भर है, सृष्टि रचना करनेवाले हैं। हमारा ज्ञान इसीलिये है कि हम परमात्मा को समझें। हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थ, वेद, उपनिषद् उसी परम शक्ति का गुण गान करते हैं। हमारे ज्योतिष-शास्त्र में उसकी विराट रचनाका वर्णन है। आकाशमें अनेक तारागण उसीकी विभूति हैं। उसकी ज्योतिसे यह सब रचना हो रही है। केवल आकाश की विभूतियाँ नहीं, वरन् पृथ्वी मण्डल पर भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्य जीव, जन्तु सब उसीके भिन्न-भिन्न आकार हैं। ये सब रूप उसीके बनाये हैं। पृथ्वी मण्डल के किसी भी भाग में चले जाइये, एक ढाँचे के मनुष्य मिलेंगे। सबकी शरीर रचना एक सी है। सबकी रचना, जो गर्भ में होती है, ईश्वर ही करता है। गौ, सिंह, मयूर आदि का कैसा-कैसा विचित्र रूप-रङ्ग बनाया है जो समझ में नहीं आता है कि कैसे किया। वह छिपा हुआ सब कुछ करता रहता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के पेड़-पौधे, फूल-फल आदि उसी की रचना का चमत्कार है। इनकी बनवट मनुष्य नहीं कर सकता।

प्रार्थना

उस [illegible] ने मानव जाति को कैसा मन दिया है जो क्या क्या सोचा करता है। मन कुछ [illegible] में अनेक दृश्य देखा करता है। मनकी भिन्न भिन्न भावनायें [illegible] नहीं दिखातीं? कब हृदय में रहा था, कब दुखी था, [illegible] अभी तक याद है। शरीर में धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है और मन भीतर सब कुछ करता रहता है। उसकी रचना देख मन प्रसन्न हो जाता है। वह चैतन्य शक्ति हृदय में [illegible] है और भीतर-ही-भीतर वह अपना प्रकाश फैलाती हुई [illegible] कार्यों के लिये प्रेरित करती रहती है। उसकी आज्ञा होती है और हम कार्य में लग जाते हैं। [illegible] व्यापक होते हुये एक-एक अंश में [illegible] है। [illegible] जीवका [illegible] छिपा रहा है। उसकी शोभा [illegible] में नहीं आती।

आप लोग जानते हैं कि हिन्दू [illegible] के एञ्जिनि-यरिङ्ग कॉलेज में जो पावर हाउस है और [illegible] नगरों के एक तरफ बना हुआ है उसका सम्बन्ध सब विभाग अपनी कालेजों [illegible], और बंगलों से है। इसी सब कमरों में प्रकाश जाता है। [illegible] पंखे चलते हैं, कुओं से पानी खिंचता है और [illegible] विभाग में अनेक कार्य होते रहते हैं। इन सबका कराने वाला यही एक [illegible] है। उसी तरह इस [illegible] सृष्टि का केवल एक [illegible] छिपा रहा है। वह सब करता हुआ दिखता है, [illegible] सब देखता है। हिमालय की सबसे ऊँची चोटी कैलाश

पर और समुद्र के गम्भीर तल में उसकी लीला का नृत्य होता रहता है।

वह गर्भ में बच्चे की रक्षा करता हुआ पालन करता है। वह उसकी रचना करता है। शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्ग बनाता और सुन्दर रच कर दिव्य रूप में प्रकट कर देता है। कैसा सुन्दर बालक पैदा होता है कि उसकी बनावट देख आश्चर्य होने लगता है। उसके कैसे छोटे छोटे [illegible] बने रहते हैं? उस कारीगर की रचना अनोखी है। वह अन्तर्जगत में जैसा कार्य करता रहता है वैसा ही बाह्य जगत के करने में लगा रहता है। कभी [illegible] की शोभा, कभी [illegible] की लालिमा कभी [illegible] और [illegible] कभी शरद् पूर्णिमा की शान्ति! उसकी ज्योति सूर्य की किरणों के [illegible] की चाँदनी में, फूल की सुगन्ध में और [illegible] वस्तुओं में दृष्टिगोचर होती रहती है।

जब कोई भाई सहायता कर देता है तो हम उसके उपकार को मानते, उसके कृतज्ञ होते और धन्यवाद देते हैं। तब जिस प्रभु ने हमारे जीवन के लिये सब कुछ दिया है, सुन्दर शरीर, दिव्य रूप दिया, उसका उपकार मानना चाहिये कि नहीं? उसका कृतज्ञ होना चाहिये या नहीं? जो हमारा [illegible] पालन करने वाला और हमारी रक्षा [illegible] है, उसके नियमों का पालन करना चाहिये या नहीं? जब उस [illegible] के भिन्न-भिन्न रूप हैं, [illegible] आकार और [illegible] है तब

क्यों हम उसे जानने का प्रयत्न नहीं करें ? जो व्यक्ति नास्ति- [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भावनायें छिपाता है, उसको भूल कर, उसके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और दूसरों पर बुरा असर क्यों [illegible] [illegible] है ? इसी तरह हम अपनी दृष्टि किसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं तो हम अपने आपको [illegible] करने लगते हैं, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं तो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं । [illegible] [illegible] नहीं [illegible] कि यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं । इसलिये [illegible] चाहते हो [illegible] [illegible] [illegible] करो ; [illegible] पवित्र विचार और शुभ भावना से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । हम दूसरों से जैसा चाहते हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करें तब हम स्वयं [illegible] [illegible] है ।

[illegible] उनके [illegible] के [illegible] से [illegible] होता है । जो [illegible] [illegible] को [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] अपने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] न हो तो कौन [illegible] ? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible]

सब काम होते रहते। वही स्टोर है, जिसमें पदार्थों का रस एकत्र होता रहता है (ईश्वर अंश जीव अविनाशी)। उसकी कृपा को सब चाहते हैं। जब ज्योति निकल जाती है तो शरीर शीघ्र नष्ट कर दिया जाता है, उसे फूंक देते हैं। कोई देखना भी नहीं चाहता। क्या [illegible] हो जाता है। माता, स्त्री सब उस शरीर से मोह त्याग देते हैं।

दुनिया भर में भिन्न-भिन्न धर्म और सम्प्रदाय हैं। सब के उत्तम और शुभ नियम मानव मात्र को मान्य हैं, चाहे वे हमारे देश के हों [illegible] दूसरे के, चाहे वे काले [illegible] के, सब उस शक्ति की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं कर सकते, उन्हें मानना ही पड़ता है। ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन सब उसके नियमों के अनुकूल चलते हैं। वह अनादि, सनातन, [illegible] सब सृष्टि को चलाता रहता है।

— : o : —

[illegible]

आज मैं आप लोगों को [illegible] जा रहा हूं। पञ्चा-तत्व में पृथ्वी, जल, वायु, [illegible] और [illegible] रहती है। मैंने माता का दूध पिया, फिर गोमाता का दूध पिया, जिससे मेरा शरीर बना। माता में ही शक्ति दी [illegible] में [illegible] है। [illegible]

[illegible] किया है। [illegible] के कुल में [illegible] गुरु, [illegible] चा सकता। गुरु पवित्र जीवन, शुद्ध [illegible] और [illegible] की मूर्ति होता [illegible] है। इसके द्वारा मनुष्य [illegible] [illegible] में पूर्ण [illegible] ही नहीं, परन्तु उससे अधिक होने की शक्ति रखता है। उसे मृत्यु का भय नहीं रहता, उसमें [illegible] रहता है।

[illegible] [illegible], [illegible] और [illegible] ध्यान की सन्ध्या में [illegible] भगवान से स्तुति करते हैं कि हम सब [illegible] सुखी, [illegible], [illegible] न हों। इसके अतिरिक्त [illegible] रहें। [illegible] ने इस मंत्र के द्वारा [illegible] [illegible] नन्द की प्रार्थना करते हैं। सब इस जीवन में [illegible] जीवन चाहते हैं। जब तक हमारा यह भौतिक जीवन है तब तक रोग न हो, [illegible] रहें, इसका तात्पर्य यह है कि हमारी शक्ति रहे, हमारा जीवन उज्ज्वल हो। हम [illegible] का [illegible] करते रहें। जिन माता पिता ने जन्म दिया है, उनका आदर करते रहें तथा उनकी सेवा करते रहें। गुरु ने ज्ञान दिया है उस गुरु को न भूलें क्योंकि गुरु ने ऐसी बुद्धि का विकास किया है जो बालक से [illegible] की अवस्था में ही [illegible] सिखाने लगते हैं और कोई कोई [illegible], [illegible], [illegible], या [illegible] हो जाते हैं।

उपनिषद् में केवल [illegible] नहीं [illegible] किन्तु [illegible] [illegible] हैं, जैसे ॐ [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible] इनमें [illegible] [illegible] हैं। प्रत्येक

मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह परमात्मा की स्तुति करे। जिस प्रभु ने जन्म दिया है उसका स्मरण करें। एक परमात्मा के द्वारा शरीर मिला है, उसी से ज्ञान प्राप्त होता है। इसी कारण सन्ध्या में गायत्री मन्त्र का जप करते हैं। गायत्री सब वेदों की माता है। गायत्री मन्त्र में सविता रूपी परमात्मा का ध्यान करते हैं जो धर्म अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करने वाला है।

जो सविता तीनों लोकों को प्रकाश देता है उसे नमस्कार है। चौदह लोकों में से प्रधान तीन लोक भूर्भुवः स्वः हैं। जन लोक में अनेक जीव-जन्तु रहते हैं। गौरी शंकर पर्वत-शिखर की ऊँचाई के बराबर गहरे महासागरों में सुन्दर मछलियां रहती हैं। इङ्गलैण्ड के अजायबघर में चार पांच मील नीचे भी सुन्दर मछलियां हैं, उनके मस्तक पर वैसी ही सुनहली पट्टी है जैसी हमारे देश की स्त्रियाँ बिन्दियाँ बांधती हैं। इतने गहरे समुद्र में ऐसी सुन्दर मछलियां किसने बनाई? एक परमात्मा ही सब का बनाने वाला है इसी तरह पृथ्वी पर अनेक जीव-जन्तु हैं। कितने सुन्दर नर-नारी हैं, कितने फूल-पत्ते हैं। एक ही स्थान पर गेंदा और गुलाब दोनों पैदा होते हैं, पर दोनों अपने-अपने रूप तथा गुण रखते हैं, अपनी-अपनी सुगन्ध रखते हैं। बिल्ली, कुत्ते बछड़े कैसे उछलते कूदते हैं। उनमें क्या शक्ति भरी है। उनको देखकर हमारा मन उछलने लगता है। कैसे-कैसे पक्षी हैं? मोर की कैसी सुन्दर पूँछ है, कोयल

की कैसी सुन्दर बोली है, सुग्गे का कैसा सुन्दर कण्ठ है और उसकी चोंच कितनी सुन्दर है? इन सब का बनाने वाला कोई-न-कोई अवश्य है। इसी तरह आकाश में कैसे-कैसे ग्रह चलते रहते हैं और समय-समय पर अपना प्रकाश देते हैं। नक्षत्र अपना भ्रमण करते रहते हैं। सूर्य हज़ारों मील दूर है, पर उदय होते ही आठ मिनट में हमारे पास उसकी किरणें आ जाती हैं। ये सब ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में हैं; यदि एक भी टूटे तो संसार में प्रलय हो जाय, पर वही परमात्मा सब को चला रहा है। वह सब में विचरने वाला सब कुछ देखने तथा करनेवाला है। जैसे माता अपनी सन्तान की देख रेख करती है वैसे ही परमात्मा भक्त की रक्षा करता है। उस भगवान् की सत्ता बुद्ध ने भी मानी है और उसे पाने के लिये नियम बताये हैं, सदाचार, यम, नियम द्वारा हृदय शुद्ध करने का आदेश दिया है। सच बोले, हृदय पवित्र करे, तब ज्ञानचक्षु से परमात्मा का दर्शन हो।

परमात्मा इस शरीर के अन्दर बैठा है जैसे कोई मोटर में सवार हो। शरीर कपड़े की तरह है, जिसे हम जीर्ण होने पर बदल देते हैं। आत्मा सब जीवों में एक सा है। मच्छड़ में वही आत्मा है। मच्छड़ कान में कहता है कि मैं भी वही हूँ। मक्खी उड़ती रहती है, उसे भी दुःख या सुख होता है। उस आत्मा का दर्शन पवित्र हृदय वाले को हर जगह होता है। शीशे की तरह उज्ज्वल मन करे, बुद्धि को शीशे के समान

निर्मल कर ले, तब ध्यान आता है। आत्मा सूत की तरह है जो मणियों को गूँथे रहती है। वह कीट पतंग में रहती है। पहली शिक्षा यह मिलती है कि परमात्मा है, उसकी सत्ता नित्य है। दूसरी शिक्षा यह मिलती है कि जब परमात्मा सब में है तो कौन किसे मारे, किसे कष्ट दे। कोई अपने को कष्ट नहीं देता। वैसे ही एक परमात्मा का वैभव है। वही हममें और तुममें है; "अब हौं कासौं बैर करौं।"

प्रत्येक मनुष्य को ऐसा कोई काम न करना चाहिये जो वह माता से न कह सके। ऐसा नियम मैंने किया था। इस नियम से मैं कई पापों से बचा, मुझे शक्ति मिली और मेरा जीवन उत्साह और दिव्य ज्योति से उज्वल होता गया।

जो काम करे वह परमात्मा कृष्ण भगवान् को अर्पण कर दे। ईश्वर को पवित्र भाव, पवित्र विचार अर्पण किये जाते हैं। झूठे व्यवहार परमात्मा को अच्छे नहीं लगते। ईश्वर सत्य का प्रेमी है। पांचवी शिक्षा मुझे यह मिली कि ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे। सब धर्मों से हिन्दू धर्म में एक विशेषता यह है कि वह ब्रह्मचर्य का महत्व बताता है। ब्रह्मचर्य जीवन है। ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर पच्चीस वर्ष तक विद्या प्राप्त करे। सन्ध्या, नित्यकर्म और ईश्वर प्रार्थना कर शरीर और आत्मा को पुष्ट करे। पचीस से पचास तक गृहस्थ बने, कुल मर्यादा का पालन करे, माता-पिता की सेवा करे, अपनी पत्नी के

सिवाय अन्य स्त्री पर मातृ-भाव रक्खे। सन्तान पैदा करे, सामाजिक जीवन बितावे, अतिथि सत्कार, श्राद्ध, तर्पण, कुटुम्ब पालन करे, पचास से पचहत्तर तक वानप्रस्थ रहे। गृहस्थी का भार सन्तान को दे और उनको शिक्षा देकर उज्जवल जीवन व्यतीत करे। परमात्मा की ओर लक्ष्य बढ़ावे। पचहत्तर वर्ष के उपरान्त सन्यासी हो। लोक सुख से विमुख हो। परमात्मा का चिन्तन और ध्यान करे।

ब्रह्मचर्य का आजीवन पालन करे। केवल सन्तान प्राप्ति के लिये विवाह कहा गया है, विषय भोग के लिये नहीं। सब जीव भोग-विलाश में लिप्त रहते हैं, केवल मनुष्य विवेक से अपना जीवन उज्जवल करता है, प्राणायाम कर मन और इन्द्रियों को रोकता है। मनुष्य परोपकार कर अपना और दूसरे का हित करता है। एक बार मेरे बच्चों को एक अंग्रेज ने आपत्ति से बचाया, मैं उसके उपकार को नहीं भूल सकता।

यदि पाप किया है तो प्रायश्चित्त कर ले। आगे फिर पाप न करे। सवेरे और शाम को सन्ध्या कर ईश्वर से प्रार्थना कर ले। जैसे स्नान से शरीर शुद्ध होता है वैसे ही भजन से हृदय। सबसे पहला धर्म भार और परमात्मा का स्मरण, दूसरा काम माता-पिता और गुरु की सेवा, तीसरा काम प्राणि-मात्र का लाभ, चौथा देश सेवा और तब जगत् की सेवा का भार ले।

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेऽनाथ विद्यया ।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव ॥

सत्य बोले, ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे, विद्या पढ़े, देश सेवा करे और लोक में सम्मान प्राप्त करे। यह अन्तिम उपदेश हर एक छात्र को हमेशा स्मरण रखना चाहिये और इसके अनुसार आजीवन आचरण करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है।

विद्यार्थियों से—

यह शरीर परमात्मा का मन्दिर है। इसमें ईश्वर का निवास है। सदैव उसको अपने भीतर अनुभव करो और इस मन्दिर को कभी अपवित्र न होने दो। इस मन्दिर को अपवित्र बना देने वाली कुछ बातें हैं जिनसे सदा बचो। भूलकर भी, स्वप्न में भी असत्य मुँह से न निकले, इसकी कोशिश बराबर करो। यदि कहीं भूल से झूठ निकल जाय तो उस असत्य के लिये प्रार्थना करो, क्षमा मांगो, सच्चे और पवित्र हृदय से उसके चरणों में गिरो और पुनः असत्य न बोलने का व्रत लो। उसे अपना प्राण देकर भी पालो।

इस पवित्र मन्दिर का पालक ब्रह्मचर्य्य है। ब्रह्मचर्य्य ही हमें वह आत्मबल देता है जिसके द्वारा हम संसार को जीत सकते हैं। ब्रह्मचर्य्य ही की यह महत्ता है कि मेघनाथ को परास्त करने के लिये लक्ष्मण जैसा ब्रह्मचारी चुना गया। अर्जुन ने ही ब्रह्मचर्य्य के बल से जयद्रथ को हराया था। महा-

वीर, भीष्म, अर्जुन, लक्ष्मण, शंकर ब्रह्मचर्य की मूर्ति हैं। हम ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने भीतर वह विद्युत् शक्ति भर सकते हैं, जिसे प्राप्त कर हम विश्व विजयी बन सकते हैं। लक्ष्मण और अर्जुन को सदा ध्यान में रक्खो। ब्रह्मचर्य के पालन करने में उनका स्मरण बड़ी सहायता देगा। भारतवर्ष का मस्तक इन्हीं ब्रह्मचारियों ने ऊँचा रक्खा है और आज इसकी रक्षा का भार तुम्हारे सिर पर है। महापुरुषों के चित्र अपने कमरे में लगा लो और उन्हीं के उपदेश और आचरण पर अपने मन को जमाओ। हृदय को कभी कलुषित न होने दो। मन को सदा प्रफुल्ल और उल्लसित रक्खो। तुम लोग धर्म के सैनिक हो, धर्म की रक्षा के लिये सरस्वती के सैनिक हो। सैनिक का आदर्श अपने सामने रखो। प्रातःकाल पाँच बजे के पूर्व अवश्य विस्तर छोड़ दो और नित्य कर्मादि से निवृत्त होकर एकान्त में भगवान से प्रार्थना करो।

आह्निक (डायरी) लिखने से मनुष्य को उन्नति में बहुत सहायता मिलती है। संसार के अनेक महापुरुषों के चरित्र में यह पाओगे कि वे अपनी दुर्बलता को डायरी में नोट करते जाते थे और उसे दूर करने के लिये भी अथक प्रयत्न करते जाते थे। डायरी में अपना हृदय खोल कर रख दो। वहाँ भगवान् को सम्मुख समझकर अपनी बुराइयों, दोषों और अपराधों के लिये पश्चाताप करो और परमात्मा से क्षमा मांगो। तुम्हारे जीवन को पवित्र, सुखी, नियमयुक्त बनाने

के लिये गीता का यह श्लोक बहुत लाभदायक सिद्ध होगा :—

> युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
> युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

सभी बातों में संयम सीखो । वाणी में संयम, भोजन में संयम रक्खो और अपने सभी कार्य्यों में शीलवान् बनो । शील ही से मनुष्य मनुष्य बनता है । शीलम् परम् भूषणम् । शील ही पुरुष का सबसे उत्तम आभूषण है ।

कठोर काम में अनवरत लगे रहने का अभ्यास डालो । पढ़ते समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो और पुस्तकों में, लेखक की विचारधारा में, डूब जाओ । यही तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी उपासना है और यही तुम्हारी पूजा है । कठिन परिश्रम करना सीखो । खूब गड़कर, जमकर मेहनत करो और अपने उच्च और पवित्र आदर्श को कभी मत भूलो । शास्त्र, बुद्धि बल और बाहुबल, दोनों का उपार्जन करो । सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श न भूलो । हिन्दू विश्वविद्यालय की संस्थापना तुम्हारे भीतर शारीरिक बल के साथ धर्म की ज्योति और ज्ञान का बल भरने के लिये हुई है, इसे सदैव स्मरण रक्खो । स्त्री जाति का सदा आदर करो । जो बड़ी हैं उनको माता के समान और जो छोटी हैं उन्हें पुत्री के समान देखो । उनके प्रति कभी कोई रूखापन या अपराध न करो ।

[illegible]



हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति पूज्य मालवीय जी स्वागत करते हैं ।

... को ...

मैं नवयुवक और ... से यह कहता हूँ कि आप अपनी ... को स्मरण करें जिन्हें आपने ... प्राप्त करने के पहले मुक्ति तथा ... ही द्वारा अपनी मातृ-संस्था से लिया है। उन ... को याद कर लीजिये। उन उपदेशों को भी आप याद कर लें जिन्हें हमारे जीवन के बाद ... ने आपको हमारे ऋषियों की भाषा में सुनाया है। सत्य बोलो, सुकृता में रहो, तथा सत्य ही सीखो। जीवन पर्यन्त विद्या अध्ययन करते रहो, ... करो तथा किसी से भी न डरो। केवल उन्हीं कार्यों से डरो जो निकृष्ट और त्याज्य हैं। सत्य तथा न्याय के लिये सदैव प्रस्तुत रहो। अपने भाइयों की सेवा से प्रेम करो। ... से प्रेम करो। ... की गुरु-भक्ति करो। जहाँ कहीं भी तुम्हें सुअवसर मिले भलाई करो। जो कुछ तुमसे हो सके दान करो।

जिस दिव्य शक्ति की शिक्षा आपको इस ... में दी गई है, उसे स्मरण रक्खो। इस बात का ध्यान रक्खो कि यह समस्त सृष्टि एक ही है, और इसका नियन्ता तथा ... एक ..., अनेक नाम अथवा ... है, जिसके बिना कुछ भी जीवित नहीं रह सकता। यह याद रक्खो कि यह विश्व उसी अद्वितीय शक्ति का ... है। जैसा कि ... ने बताया है कि ...

अथवा ईश्वर सबका कर्ता तथा भर्ता वही है। इस बात का ध्यान रक्खो कि वह ... ब्रह्म कहो अथवा ईश्वर ... और ... वर्तमान है। जीवित सृष्टि का वही जीवन है। जब कभी आपको इस शक्ति के अस्तित्व में सन्देह पैदा हो तो आप अपनी दृष्टि उस प्रकाश की ओर फेरिये जो उन तारागणों और ग्रहों से विचित्र प्रकार से सुशोभित है, जो असंख्य युगों से ... ढङ्ग से भ्रमण करते आये हैं। उस प्रकाश की ओर ध्यान दो जो अत्यन्त दूरस्थ सूर्य से पृथ्वी के जीवों की रक्षा के लिये ... वेग से यात्रा करके आता है। अपनी दृष्टि तथा अपने मस्तिष्क को अपनी शरीररूपी अद्भुत मशीन को और ... जिसे ... ने आपको दिया है, और इस काल की अद्भुत बनावट और शक्ति पर ... पूर्वक विचार करो। अपने चारों ओर निगाह करो और ... नियों को, मनोहर वृक्षों को, कमनीय पुष्पों तथा स्वादिष्ट फलों को देखो। इस बात को कल्पना रक्खो कि ... जिसे हम ब्रह्म अथवा ईश्वर कहते हैं, ... सम्पूर्ण ... सृष्टि में उसी प्रकार वर्तमान है जैसे ... न आवें। यही सब धार्मिक उपदेश का सार है—

सततं ... न जातु ... ।
... ... किङ्कराः ॥

ईश्वर को सदा स्मरण रखना चाहिये। उसे कभी न

भुलाओ। सभी धार्मिक आदेशों तथा निषेधों का इन्हीं दो वाक्यों से पालन हो जाता है। यदि आप यह याद रक्खेंगे कि परमात्मा सभी प्राणधारियों में विद्यमान है और वही सभी जीवधारियों में विद्यमान है तो उस ईश्वर तथा अपने अन्य जीवधारी भाइयों से आपका सच्चा सम्बन्ध बना रहेगा। इसी विश्वास से कि परमात्मा सभी प्राणधारियों में विद्यमान है, मूल-उपदेशों का निर्माण हुआ है जिनमें सभी प्रकार के मानव-धर्म के आदेशों तथा धर्मों का समावेश हो जाता है। जैसे:—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

अर्थात्, दूसरों के प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करो जिसे तुम अपने प्रति किये जाने पर अप्रिय समझते हो, तथा :—

यद्यदात्मनि चेच्छेत् तत्परस्यापि चिन्तयेत्

अर्थात्, जो कुछ तुम अपने प्रति चाहते हो, वैसा ही तुम्हें दूसरों के प्रति भी करना आवश्यक है, ऐसा समझना चाहिये।

ये दो प्राचीन आदेश मनुष्यमात्र के लिये पूर्ण आचरणीय हैं।

यदि कोई मनुष्य आपकी घड़ी अथवा आपकी कोई अन्य वस्तु चुरावे तो आपको दुःख होता है। इसी प्रकार दूसरों की घड़ी आदि चुराकर आप उसे दुःख न पहुँचाइये। जब आप

बीमार या प्यासे रहते हैं उस समय आप चाहते हैं कि कोई आपको औषधि देता और आपकी प्यास बुझा देता। इसलिये यदि आपका कोई भाई या आपकी बहन उसी प्रकार की सेवा की आवश्यकता में हो तो आपका यह धर्म है कि आप उसकी सेवा करें। इन दो अकरणीय तथा करणीय आदेशों को आप याद रक्खें, क्योंकि धर्म के ये ही दो स्वर्ण-नियम हैं, जिनकी प्रशंसा संसार के सभी धर्मों में की गई है। धर्म तथा नीति के ये ही आत्मा हैं। इसाई धर्म तो इसे अपना मुख्य धर्म मानता है। परन्तु वास्तव में यह एक बहुत ही पुरातन उपदेश है, जो ईसा के जन्म से हजारों वर्ष पहले महाभारत में प्रशंसा पा चुका है। मैं किसी सकुंचित विचार से ऐसा नहीं कहता। मेरा अभिप्राय यह है कि आपके हृदय में यह बात दृढ़ हो जाय कि ये प्राचीन उपदेश हमारे यहाँ परम्परा से चले आते हैं और हमारी अमूल्य वपौती हैं। ये केवल हिन्दुओं ही के लिये नहीं हैं बल्कि सारी मनुष्य-जाति की अमूल्यनिधि है। आप इन्हें अपने हृदय में सचित कर लीजिये, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि ईश्वर तथा मनुष्य दोनों के साथ आपका सम्बन्ध सत्य तथा प्रिय रहेगा।

आपको यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि यह देश आपका जन्म स्थान है। यह एक सुन्दर देश है। सभी बातों के विचार से इसके समान संसार में कोई दूसरा देश नहीं है। आपको इस बात के लिये कृतज्ञ तथा गौरवान्वित होना चाहिये

कि उस कृपालु परमेश्वर ने आपको इस देश में पैदा किया। आपका इसके प्रति एक मुख्य कर्त्तव्य है। आपने इसी माता की गोद में जन्म लिया है, इसने आपको भोजन दिया, वस्त्र दिया, तथा आपका पालन पोषण करके आपको बड़ा बनाया है; यही आपको सब प्रकार की सुविधा, सुख, लाभ तथा यश देती है। यही आपको क्रीड़ा-भूमि रही है और यही आपके जीवन का कार्य क्षेत्र बनेगी तथा आपकी सभी आशाओं तथा उमङ्गों का केन्द्र रहेगी। यही आपके पूर्वजों तथा जाति के बड़े-से-बड़े अथवा छोटे-से-छोटे मनुष्यों का कार्य क्षेत्र रही है। अतएव पृथ्वी के धरातल पर यही भूमि आपके लिये सब से बढ़कर प्रिय और आदरणीय होनी चाहिये।

इसलिये जब कभी आपका देश आपसे किसी प्रकार की सहायता मांगे, उस समय आपको अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के लिये सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये। अपने देशवासियों से प्रेम करो तथा उनमें एकता का विकास करो। आपमें सहनशीलता, क्षमा तथा निःस्वार्थ सेवा के महान भाव के विकाश की आवश्यकता है। हम लोग आपसे यह आशा करते हैं कि आप अपने छोटे भाइयों के उत्थान के लिये, अधिक-से-अधिक अपना समय तथा शक्ति लगावें। हम लोग आप से आशा करते हैं कि आप उन्हीं के साथ मिलकर काम करें, उनके शोक तथा आनन्द में उनका हाथ बटावें, और उनके जीवन को दिनोदिन सुखमय बनाने का प्रयत्न करें। मुझे आपको एक और उपदेश

देना है। हम सब लोगों को इस बात का दुःख है कि हमारे देश में अत्यधिक अज्ञान है। हमें इसको दूर करने के लिये स्वराज्य प्राप्ति की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। आप लोगों में से प्रत्येक नवयुवक और नवयुवती से मेरा यह आदेश है कि आप इस बात का प्रण कर लें कि आप निरक्षरता को हटाने के लिये सत्याग्रह करेंगे और करोड़ों भारतीयों में ज्ञान तथा प्रकाश के प्रचार के लिये संग्राम करेंगे (हर्ष ध्वनि)। अपनी शक्ति का सङ्गठन कीजिये। अपने अवकाश तथा छुट्टियों में आप एक नियम बना लीजिये कि आप गावों में जाकर गाँव-वालों के साथ काम करें। इस बात पर दृढ़ हो जाइये कि इस अविद्या रूपी अन्धकार को हटा देंगे जो हमारी अधिकांश जनता को आच्छादित किये हुये हैं। पाठशालायें खोलिये और जनता को पढ़ने, लिखने तथा गणित की शिक्षा दीजिये। इसमें धर्म को भी जोड़ दीजिये। धर्म वही हो जिसका उपदेश मैंने अभी दिया है, अर्थात् सहनशीलता, क्षमा तथा प्रेम युक्त सेवा का धर्म। इन चारों बातों की शिक्षा प्रत्येक बालक तथा बालिका, प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष और प्रत्येक युवा और वृद्ध को दीजिये। धर्म का त्याग मत कीजिये। सुचारु रूप से पढ़ने और पढ़ाने से मनुष्यमात्र में सुख तथा एकता का संचार होगा। शिक्षा का प्रचार अत्यन्त व्यापक ढंग से कीजिये। अपनी शिक्षा द्वारा अपने भाइयों की स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा व्यायाम की उन्नति में सहायता कीजिये और उनसे कहिये कि वे यह

कार्य स्वयं अपने सहयोगी सङ्गठन द्वारा करें। मैं आप सब को, जो आज विश्वविद्यालय से बाहर जा रहे हैं, तथा उनको जो कुछ दिनों तक यहाँ रहेंगे, यह आदेश करता हूँ कि आप लोक-शिक्षा-समिति स्थापित करें, और शीघ्र ही निरक्षरता तथा अज्ञान के विरुद्ध संग्राम छेड़ दें, जिसका इतने दिनों तक रह जाना भी हम लोगों के लिये लज्जा की बात है। देश के सभी शिक्षित नवयुवकों को इस महान् कार्य में हाथ बंटाने के लिये निमन्त्रित कीजिये। हमें केवल मिलकर कार्य प्रारम्भ कर देना है। हमारे उद्योग में सफलता अवश्य होगी।

अपने जीवन पर्य्यन्त ईश्वर तथा देश के प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन की ओर ध्यान रखिये। यह कठिन परि-स्थितियों में आपकी रक्षा करेगा और आपके मार्ग में पड़ने वाली रुकावटों का निवारण करेगा। ईश्वर के प्रति अपने कर्त्तव्य का एक मात्र स्मरण ही केवल मनुष्य मात्र ही के प्रति नहीं, वल्कि परमात्मा के वनाये सभी निरीह जन्तुओं के प्रति आप में भ्रातृभाव, दया तथा सहानुभूति संचार करेगा। यह आत्म रक्षा तथा देश रक्षा के अवसरों के अतिरिक्त आपको दूसरों को हानि पहुँचाने से वचायेगा। स्वदेश के प्रति अपने कर्त्तव्य का ध्यान आपको उसके हित तथा सभ्यता की रक्षा के लिये सब कुछ न्योछावर एवं वलिदान करने को सदैव प्रस्तुत रहने में सहायक होगा। आप स्वतन्त्रता चाहते हैं, तथा अपने देश में स्वराज्य की इच्छा करते हैं। तव आपको इसकी आव-

श्यकतानुसार सब कुछ बलिदान करने के लिये सदैव प्रस्तुत रहना ही पड़ेगा। आपने अपने अध्ययनकाल में स्वदेश अथवा विदेश में स्वतन्त्रता प्राप्ति अथवा स्वतन्त्रता-रक्षा के लिये होने वाले प्राचीन तथा वर्त्तमान आन्दोलनों का जोशीला इतिहास पढ़ा होगा। आपने शूरता तथा आत्मबलिदान के भावों से व्याप्त संस्कृत तथा आधुनिक भारतीय साहित्यों का भी अध्ययन किया होगा। आपने बार-बार इंगलैण्ड के प्रभावशाली साहित्य में अनेक ऐसे अवतरणों को पढ़ा होगा जिनमें उस देश की स्वतन्त्रता, शूरता तथा आत्मत्याग की प्रशंसा का गान बड़े गर्व से किया गया है। आपने यह पढ़ा होगा कि किस प्रकार गत महासमर में इंगलैण्ड और फ्रान्स के नवयुवकों ने अपनी अथवा अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये स्वयं अपने को मृत्यु के मुँह में डाल दिया, तथा किस साहस, शूरता तथा दृढ़ता से फ्रान्स तथा इंगलैण्ड के सुकुमार बालकों ने अपने उद्योग में विजय-प्राप्त करने तक युद्ध को जारी रक्खा और इस प्रकार अपनी मातृ-भूमि के लिये अमिट गौरव प्राप्त किया। मैं आपको मातृ-भूमि के गौरव के लिये उसी प्रकार के स्वतन्त्रता से प्रेम, तथा उसी प्रकार के आत्म त्याग की भावना को अपने में संचय करने का उपदेश देता हूँ। (हर्ष-ध्वनि) केवल इसी तरह से हम पुनः एक शक्ति-शाली राष्ट्र बन सकते हैं।

—:०:—

धर्म महिमा

"धर्म से विद्या, रूप, धन, शूरता, कुलीनता, नीरोगता, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष सब प्राप्त होता है। इसलिए, हे पुत्र, नित्य हृदय से धर्म का आचरण करो। धर्म से विमुख होकर अधर्म मत करो, नहीं तो घोर नरक में गिरोगे।

जो दृढ़ राखै धर्म को, तेहि राखै करतार।

मनुष्य का सबसे बड़ा धन, धर्म है। इसलिए बड़े और छोटे कितने प्राणियों ने सङ्कट पड़ने पर अपना प्राण दे दिया किन्तु अपना धर्म नहीं छोड़ा। न केवल इस लोक में किन्तु परलोक में भी साथ देनेवाला एक धर्म ही है। इसी लिए भक्त लोग प्रार्थना करते हैं कि—

सिर जावै तो जाय प्रभु! मेरो धर्म न जाय।"

—:०:—

प्रायश्चित और सन्ध्या

"रात्रि में जिस पुरुष या स्त्री से पाप या भूल बन पड़े उसको प्रातःकाल उठकर नहा धोकर पछतावा करना चाहिये और ईश्वर से उस पाप या भूल के लिए क्षमा मांगनी चाहिये और यह संकल्प करना चाहिये कि फिर पाप या भूल न होवे। इस प्रकार से तन और मन को पवित्र कर 'ॐनमो नारायणाय' इस मंत्र से सर्वव्यापक और सूर्य मण्डल में प्रकाशमान ईश्वर

का ध्यान कर श्रद्धा, और भक्ति से, जल और फूल से अर्घ्य देकर मन्त्र के द्वारा उनकी उपासना करनी चाहिये।

इसी प्रकार दिन में जो पाप या भूल बन पड़े उसका प्रायश्चित सायङ्काल सन्ध्या के द्वारा करना चाहिये और सब पवित्रता और मङ्गल के निधान परब्रह्म का 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र के द्वारा पूजन और ध्यान करना चाहिये।

नारायण, वासुदेव, रुद्र, विष्णु, पितामह, राम, कृष्ण, शिव, ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म आदि देव महादेव, यह सब एक ही जगत पिता के अनेक नाम हैं। इनमें भेद भाव समझना भूल है।

जो पुरुष और स्त्री ऊपर लिखी विधि से सबेरे और सांझ को मन से, वचन से या काया से भूल से, या जानकर भी जो पाप हुये हैं उनका प्रायश्चित करते रहते हैं उनका मन पाप में लिप्त नहीं होता और प्रति दिन ईश्वर के ध्यान से उनका मन पवित्र और प्रकाशमय होता जाता है। इसलिये जो अपना भला चाहता है उस प्रत्येक प्राणी को नित्य नियम और श्रद्धा के साथ ऊपर लिखी विधि से सन्ध्या और परमात्मा की उपासना करनी चाहिये।"

—:०:—

शारीरिक बल

"शास्त्र में लिखा है कि—

धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों के साधन का मूल कारण आरोग्य है। आरोग्य, नीरोगता, तन्दुरुस्ती के विना इनमें से एक का भी साधन नहीं हो सकता। आरोग्यता रखने के लिए यह आवश्यक है कि पुरुष और स्त्री नियम के साथ उचित परिश्रम अर्थात् कसरत करें। पुरुष और स्त्री सब स्नान कर प्रातःकाल सूर्यनारायण के सामने खड़े होकर अपनी शक्ति के अनुसार १०, २०, ५०, १०० बार नमस्कार करके अपने मन को पवित्र और शरीर को नीरोग और बलवान कर सकते हैं।

और भी अनेक प्रकार के व्यायाम हैं। प्रत्येक स्त्री और पुरुष को उचित है कि किसी न किसी प्रकार का व्यायाम नित्य करें जिसमें धर्म के साधन, अर्थ के कमाने, सुख के भोगने और अन्त में परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उसकी काया प्रबल और मन निर्मल बना रहे। जो प्राणी नित्य व्यायाम करते हैं उनको रोग नहीं सताता। यदि किसी संयोग से आ भी जाता है तो विना बहुत क्लेश दिये उनको छोड़कर चला जाता है।

दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम।
हिम्मत से कारज करो, पूरेंगे सब काम॥

—:०:—

पूज्य मालवीयजी की प्रिय प्रार्थनायें

ईश्वर का ध्यान

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी ।
सर्व रहित सब उर पुर बासी ॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा ।
मति अनुमान निगम अस गावा ॥
बिनु पग चलै सुनै बिनु काना ।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिनु बाणी वक्ता बड़ योगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहै घ्राण बिनु बास अशेखा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करणी ।
महिमा तासु जाइ किमि बरणी ॥

पूज्य मालवीयजी द्वारा रचित प्रार्थना

सब देवन के देव प्रभु ! सब जग के आधार ।
दृढ़ राखहु मोंहि धर्म में, बिनवौं बारम्बार ॥
चन्दा, सूरज तुम रचे, रचे सकल संसार ।
दृढ़ राखहु मोंहि सत्य में, बिनवौं बारम्बार ॥

घट घट तुम प्रभु एक अज, अविनाशी, अविकार ।
अभयदान मोंहि दीजिये, विनवौं बारम्बार ॥
मेरे मन मन्दिर बसौ, करौ ताहि उँजियार ।
ज्ञान, भक्ति, प्रभु ! दीजिये, विनवौं बारम्बार ॥
सत चित आनन्द घन प्रभो, सर्व शक्ति आधार ।
धन बल, जन बल, धर्म बल, दीजै सुख संसार ॥
पतित उधारन, दुख हरन, दीनबन्धु, करतार ।
हरहु अशुभ, शुभ दृढ़ करहु, विनवौं बारम्बार ॥
जिमि राखे प्रह्लाद को, लै नृसिंह अवतार ।
तिमि राखौ अशरण शरण, विनवौं बारम्बार ॥
नहिं लालच बस, लोभ बस, और न डर बस नाथ ।
तजौं धरम, वर दीजिये, रहौ सदा मम साथ ॥
जाके मन प्रभु तुम बसौ, सो डर कासों खाय ?
सिर जावै तो जाय प्रभु, मेरो धरम न जाय ॥
उठौं धर्म के काम में, उठौं देश के काज ।
दीनबन्धु तव नाम लै, नाथ ! राखियो लाज ॥
रवि शशि सिरजनहार प्रभु, मैं विनवत हौं तोहि ।
पुत्र सूर्य सम तेज युत, जग उपकारी होंहि ॥
हों प्रभु ! हम सब राम सम, अथवा कृष्ण समान ।
धीर वीर बुध धर्म दृढ़, जगहित करैं महान ॥
पुत्री भारत की बनें, सीता सती समान ।
अथवा सावित्री सदृश, धर्म, शक्ति, गुण-खान ॥

रक्षा होवै धर्म की, बढ़ै जाति को मान।
देश पूर्ण गौरव लहै, जय भारत संतान ॥
मैं दुर्बल अति दीन प्रभु! पै तुव शक्ति अपार।
हरहु अशुभ, शुभ दृढ़ करहु, विनवहुँ बारम्बार ॥

—:०:—

श्लोक

रमते सर्व भूतेषु, स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्म स्वरूपेण, योहि रामः प्रकीर्त्यते ॥
तस्यैवांशोऽसिजीवत्वं, सच्चिदानन्दरूपिणः।
देहे निरामये दीर्घं, वस धर्मे दृढ़ो भव ॥

अनुवाद

स्थावर जंगम जीव में घट घट रमता राम।
सत, चित, आनन्द घन, प्रभु! सब विधि पूरण काम ॥
अंश उसी के जीव हो, करो उसी से नेह।
सदा रहो दृढ़ धर्म चिर, बसो निरामय देह ॥

प्रार्थना के श्लोक

मूकं करोति वाचालं, पंगुम् लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहम् वन्दे, परमानन्द-माधवम् ॥

जिसकी कृपा से गूंगे बोलने लगते हैं, लंगड़े पहाड़ डांक जाते हैं ऐसे परमानन्द-माधव अर्थात् भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ।

स्वकर्म फल निर्दिष्टां, यां यां योनिं व्रजाम्यहम् ।
तस्यां तस्यां हृषीकेश !, त्वयि भक्तिर् दृढ़ाऽस्तु मे ॥

अपने कर्मों के फल स्वरूप जिस जिस योनि में मेरा जन्म हो उस उस में हे हृषीकेश ! तुममें मेरी भक्ति दृढ़ रहे ।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय, गो ब्राह्मण हिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय, गोविन्दाय नमोनमः ॥

सबसे बड़े देव को, गौ और ब्राह्मण का हित करने वाले, जगत् का कल्याण करने वाले श्रीकृष्ण गोविन्द को बारबार नमस्कार है ।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ! ॥

हे देवों के देव ! तुम्हीं मेरी माता हो, तुम्हीं मेरे पिता हो, तुम्हीं भाई और तुम्हीं मित्र हो । तुम ही विद्या और तुम ही धन हो । मेरे सबकुछ तुम्हीं हो ।

नाथ ! योनि सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वचला भक्तिर् अच्युतस्तु सदा त्वयि ॥

हे नाथ ! हे अच्युत ! हजारों योनियों में जहाँ जहाँ मैं जन्म लूं वहाँ वहाँ तुममे मेरी भक्ति सदा अचल रहे ।

आकाशात् पतितं तोयं, यथा गच्छति सागरम् ।
सर्व-देव-नमस्कारः, केशवं प्रति गच्छति ॥

जिस प्रकार आकाश से गिरनेवाला पानी समुद्र में ही जाता है उसी प्रकार किसी भी देवता को किया हुआ नमस्कार केशव (भगवान्) को ही पहुँचता है ।

अनायासेन् मरणं, विना दैन्येन् जीवनम् ।
मरणान्ते तव सानिध्यं, देहिमे परमेश्वरम् ॥

मेरी मृत्यु अनायास हो होजाय अर्थात् बीमारी इत्यादि का कष्ट न हो, जीवन बिना दीनता के कटे अर्थात् किसी के सामने हाथ न फैलाना पड़े, मरण काल में तुम्हारा साक्षातकार होवे अर्थात् तुम मेरे सामने रहो, हे परमेश्वर ! बस मुझे यही वर दो ।

असित गिरि समंस्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरूवर शाखा लेखनी पत्र मुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तवगुणानाम् ईश ! पारं न याति ॥

हे भगवान् ! समुद्र के कलमदान में, कज्जल पहाड़ की स्याही बनाकर, वृक्ष के डाल की कलम से पृथ्वी के कागज पर यदि स्वयं सरस्वती जी तुम्हारे गुणों का वर्णन लिखें तो भी उनका पार नहीं पाया जा सकता ।

विपदो नैव विपदः, संपदो नैव संपदः ।
विपद् विस्मरणं विष्णोः, संपन् नारायण-स्मृतिः ॥

विपत्तियाँ सच्ची विपत्ति नहीं और धन दौलत सच्ची सम्पत्ति नहीं । विष्णु को भूल जाना ही विपत्ति है और नारायण या भगवान का स्मरण ही सम्पत्ति है ।

नाम महिमा

(विष्णु सहस्त्र नाम से)

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामहस्त्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥१॥

निरन्तर अच्छे विचार रखनेवाला पुरुष, संसार के स्वामी, देवताओं में पूज्य,

आदि और अन्तरहित, पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की स्तुति उनके सहस्त्र नामों द्वारा करता हुआ (मनुष्य सभी दुःखों से पार हो जाता है) ॥१॥

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।
ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च, यजमानस्तमेवच ॥२॥

उन्हीं अमर पुरुष विष्णुभगवान् की भक्ति पूर्वक नित्य उपासना, ध्यान, स्तुति, नमस्कार और पूजा करता हुआ पुरुष (सभी दुःखों से छूट जाता है) ॥२॥

अनादि निधनं विष्णुं, सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं, सर्व दुःखातिगो भवेत् ॥३॥

उन्हीं आदि और अन्त हीन, सभी लोकों के स्वामी, जनताके रक्षक श्रीविष्णु भगवान् की नित्य स्तुति करता हुआ पुरुष सभी संकटों से छूट जाता है ॥३॥

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्ति वर्धनम् ।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥४॥

सब जगह निवास करने वाले, सभी धर्मों के जानने वाले, मनुष्यों की कीर्ति बढ़ाने वाले, सभी लोकों के स्वामी, सभी जीवों में श्रेष्ठ, सभी जीवों को पैदा करने वाले ॥४॥

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥५॥

कमल के समान नेत्र वाले भगवान् विष्णु की पूजा स्तुति भक्ति-पूर्वक करनी चाहिए—यही सभी धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है—ऐसा मेरा मत है ।५।

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥६॥

जो विष्णु भगवान् महान् तेज और महान् तप से भी अधिक श्रेष्ठ हैं, जो सब जगह व्यास रहने और संलग्न रहने वालों में अधिक-व्यापक और संलग्न हैं ॥६॥

पवित्राणां पवित्रंयो मंगलानांच मंगलम् ।
दैवतं देवतानांच भूतानांयोऽव्ययः पिता ॥७॥

जो महान् पवित्र और परम मंगलमय हैं, तथा देवताओं में श्रेष्ठ और जीवों के कभी भी न नाप होने वाले परम् पिता है ॥७॥

यतःसर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥८॥

जिन से प्रथम युग के प्रारम्भ में सभी जीव पैदा होते हैं एवं अन्तिम युग के अन्त होने पर फिर सभी जीव जिसमें समाजाते हैं ॥८॥

तस्य लोक प्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।
विष्णोर्नाम सहस्त्रं मे शृणुपापभयापहम् ॥९॥

महापुरुष विष्णु भगवान के प्रधान नामों के अतिरिक्त जितने भी नाम ऋषियों द्वारा गाये जाने से विख्यात हैं उन्हें मैं ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये कहूँगा ॥९॥

यानि नामानिगौणानि विख्यातानि महात्मनः ।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामिभूतये ॥१०॥

विष्णुं जिष्णुं महाविष्णुं प्रभविष्णुं महेश्वरम् ।
अनेकरूपदैत्यान्तं नमामि पुरुषोत्तमम् ॥११॥

सब जगह व्याप्त रहने वाले, सब जगह जय प्राप्त करने वाले सबको पैदा करनेवाले, सबके स्वामी, पुरुषों में श्रेष्ठ तथा अनेकरूप धारण करनेवाले, दैत्यों के संहार करनेवाले, भगवान विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥११॥

—:०:—

प्रार्थना

गजेन्द्र की प्रार्थना

(गजेन्द्र मोक्ष से)

ओ३म् नमो भगवते तस्मै, यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादि बीजाय, परेशायाभिधीमहि ॥१॥

प्रकृति-पुरुष-स्वरूप जो भगवान् सब शरीरोंमें कारणरूपसे प्रवेश किये हुए हैं और अतएव इस शरीरने जिनसे चैतन्यलाभ किया है एवं जो परमेश्वर हैं, मैं केवल उन्हींका ध्यान करता हूँ ॥१॥

यस्मिन्निदं यतश्चेदं, येनेदं यं इदं स्वयम् ।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं, प्रपद्ये स्वयंभुवम् ॥२॥

जिनमें यह विश्व अधिष्ठित है और जिनसे उत्पन्न है एवं जिनके द्वारा इसकी सृष्टि हुई है, जो स्वयं विश्वस्वरूप हैं एवं कार्य और कारण दोनोंसे भिन्न हैं, उन्ही स्वयंभूके चरणोंके शरणागत हूँ ॥२॥

यः स्वात्मनीदं निज माययार्पितं,
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ।
अविद्धदृक्साक्ष्यु भयं तदीक्षते,
स आत्म मूलोऽवतु मां परात्परः ॥३॥

जिनकी मायाद्वारा यह विश्व (जिनमें) कभी प्रकाशित होता है और कभी प्रलयकालमें विलीन हो जाता है, जो साक्षीरूप से कार्य और कारण दोनोंको देखते हैं एवं प्रकाशक चक्षुआदि इन्द्रियोंके भी प्रकाशक होनेसे जो स्वयं प्रकाशमात्र हैं वह इस प्राण-संकटसे मेरी रक्षा करें ॥३॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो,

लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदासीद्गहनं गभीरं,
यस्तस्य पारेऽभि विराजते विभुः ॥४॥

काल पाकर सब लोक और लोकोंके कारण लोकपालगण संपूर्णरूपसे विनष्ट हो जाते हैं, उस समय घोर अनन्त अंधकार ही शेष रहता है,—उस अंधकारके पारमें जो अपार ईश्वर विराजमान रहते हैं उनकी मैं शरण हूँ ॥४॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुः,
जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो,
दुरत्ययानुक्रमणः स माऽवतु ॥५॥

देवगण और ऋषिगण भी उनके स्वरूपको नहीं जान पाते, तब अन्य प्राणी कैसे जान सकते हैं ? अथवा विविध आकृतियोंको ग्रहण करनेवाले उनके रूपका वर्णन करनेमें समर्थ हो सकते हैं ? नटोंके समान जिनका चरित्र नहीं जाना जाता वह ईश्वर इस प्राणसंकटसे मेरी रक्षा करें ॥५॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमंगलं,
विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्य लोकव्रत मव्रणं वने,
भूतात्मभूतः सुहृदः स मे गतिः ॥६॥

साधु, सब प्राणियोंके सुहृद, आत्मदर्शी, निःसंग मुनिगण जिनके मंगलप्रद पद देखनेकी लालसासे वनोंमें वास कर ब्रह्मचर्य आदि अलौकिक व्रत धारण करते हैं वही ईश्वर मुझ अगतिकी गति हैं ॥६॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा,

न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्यय संभवाय,
यः स्व मायया तान्यनुकालमृच्छति ॥७॥
तस्मै नमः परेशाय, ब्रह्मणेऽनन्त शक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय, नमः आश्चर्य कर्मणे ॥८॥

जो जन्म, कर्म, नाम और रूपसे रहित, निर्गुण और निर्दोष हैं, तथापि विश्वकी उत्पत्ति और विनाशके लिये अपनी मायाके द्वारा समय समय पर जन्मादि स्वीकार करते हैं, जो परमेश्वर हैं, जो ब्रह्म हैं, जो अनन्त शक्तिशाली हैं, जो अद्भुत कर्म करनेवाले और कार्यानुसार बहुतसे रूप धरनेवाले हैं उनको नमस्कार है ॥७॥८॥

नमो आत्म प्रदीपाय, साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय, मनसश्चेतसामपि ॥९॥

जो सबके प्रकाशक एवं स्वयं प्रकाशमान हैं, जो परमात्मा अर्थात् जीवके नियन्ता हैं, अतएव वाणी, मन और चित्तसे परे हैं उनको नमस्कार है ॥९॥

सत्वेन प्रतिलभ्याय, नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्य नाथाय, निर्वाण सुखसंविदे ॥१०॥
नमः शान्ताय घोराय, गूढ़ाय गुण धर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्माय, नमो ज्ञान घटनाय च ॥११॥

जो निर्गुण और विशुद्ध संन्यासके द्वारा प्रत्यक्ष स्वरूपसे प्राप्त हो सकते हैं एवं जो मोक्षसम्बन्धी आनन्दानुभवके स्वरूप हैं उनको नमस्कार है । जो शान्त, घोर, मूढ़ सत्वादि धर्मका अनुशरण करनेवाले हैं, जो निर्विशेष हैं, जो समतारूप सौम्य हैं, जो ज्ञानघन हैं उनको नमस्कार है ॥१०॥११॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं, सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्म मूलाय, मूल प्रकृतये नमः ॥१२॥

भगवान् ! आप क्षेत्रज्ञ, सबके अध्यक्ष और सबके स्वामी हैं। आप सबके आदिमें अवस्थित रहते हैं, अतएव आप आत्माका मूल और प्रकृतिकी प्रकृति (अर्थात् उत्पत्तिका कारण) हैं, आपको नमस्कार है ॥१२॥

सर्वेन्द्रिय गुण द्रष्ट्रे, सर्व प्रत्यय हेतवे ।
असता छाययोक्ताय, सदा भासाय ते नमः ॥१३॥

आप सब इन्द्रियों के देखनेवाले साक्षी हैं; सम्पूर्ण विषयों में आपके सत्-स्वरूपका आभास विद्यमान है, अतएव असत् अहङ्कार प्रपंच, प्रतिबिंबके द्वारा जैसे बिंबकी सूचना होती है वैसे ही आपकी सूचना देते हैं; सब इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ भी आपका ज्ञान कराती है। आपको नमस्कार हैं ॥१३॥

नमो नमस्तेऽखिल कारणाय,
निष्कारणायाद्भुत कारणाय ।
सर्वा गमाम्नाय महार्णवाय,
नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१४॥

आप सबके कारण, आपका कारण कोई नहीं है, आप अद्भुत कारण हैं। जैसे सब नदियाँ सागरमें आकर ठहरती हैं वैसे ही सब शास्त्र और वेदोंका आधार आप ही हैं। आप मोक्षस्वरूप और साधुलोगोंका आश्रय हैं। आपको नमस्कार है १४॥

गुणारणिच्छन्नचिदुष्मपाय,
तत्क्षोभ विस्फूर्जित मानसाय ।
नैष्कार्म्य भावेन विवर्जितागम,
स्वयं प्रकाशाय नमस्करोमि ॥१५॥

आप ज्ञानाग्निरूप हैं, आप मायाके गुणरूपी काष्ठोंमें छिपे हुए हैं। आपका मन गुणोंके कार्यों से विमुख है। जिन्होंने आत्मतत्त्वकी चिन्ताके द्वारा विधि-निषेधरूप शास्त्रका परित्याग कर दिया है, उनके हृदयमें आप आप ही आप प्रकट होते हैं-आपको नमस्कार है ॥१५॥

मा दृक्प्रपन्न पशुपाश विमोक्षणाय,
मुक्ताय भूरि करुणाय नमोऽलयाय।
स्वांशेन् सर्वतनु भृन्मनसि प्रतीत,
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१६॥

आत्मात्मजा गृहवित्त जनेषु सक्तैर,
दुष्प्रापणाय गुण संग विवर्जिताय।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय,
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१७॥

प्रभो! आप मुक्त हैं, अतएव आप ही मुझ सरीखे शरणागत पशुओंको बन्धनपाशसे छुड़ानेमें समर्थ हैं। आपकी करुणा अपार है; अधिक क्या कहें, आप कृपा करनेमें सदा तत्पर रहते हैं। आप सब देहधारियोंके मनमें अन्तर्यामी-रूपसे वास करके ज्ञानस्वरूपसे प्रकाश पाते हैं; किन्तु देहधारीगण आपकी शेष सीमाका निर्देश नहीं कर सकते। आप सब प्राणियोंके शासक हैं; आपको-नमस्कार है। आप सबके अन्तर्यामी हैं, तथापि जो लोग देह, पुत्र, भवन, धन और भृत्यादि में आसक्त हैं वे आपको नहीं पा सकते; क्योंकि आप मायाके गुणोंसे दूर हैं। जो लोग देहादिकी आसक्तिको छोड़ चुके हैं वे ही आपके ध्यानमें मग्न रहते हैं। ज्ञान ही आपका रूप है आप भगवान् हैं, आपको प्रणाम है ॥१६॥१७॥

यं धर्म कामार्थ विमुक्तिकामा,
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति।

किं त्वाशिषो रात्यपि देह मव्ययं,
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥१८॥

लोग धर्म, अर्थ काम और मोक्षके लाभकी अभिलाषासे आपकी उपासना करके अपने २ अभीष्ट और अन्यान्य मङ्गल एवं अक्षय शरीरको भी पाते हैं। आपकी दया असीम है। आप मुझको इस संकटसे छुड़ाइये ॥१८॥

एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थं,
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं,
गायन्त आनन्द समुद्र मग्नाः ॥१९॥

आपके अनन्य भक्तजन, जीवन्मुक्त सर्वज्ञ महात्मा जनोंकी सेवा,(संग) में परमानन्द-सुखका संभोग करते हुए केवल आपके ही अद्भुत मङ्गलमय चरित्र गाते रहते हैं और अन्य कोई कामना नहीं करते ॥१९॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेशम्,
अव्यक्त माध्यात्मिक योग गम्यम्।
अतीन्द्रियं सूक्ष्म मिवाति दूरम्,
अनन्त माद्यं परिपूर्ण मीड़े ॥२०॥

आप अक्षर, परमेश्वर, अव्यक्त, अध्यात्मिक योगके द्वारा मिलने योग्य, सूक्ष्मरूप पदार्थोंकी भाँति इन्द्रियोंसे परे, अनन्त, आदिपुरुष एवं परिपूर्ण परब्रह्म हैं; आपको नमस्कार है ॥२०॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा, वेदा लोकश्चराचराः।
नाम रूप विभेदेन, फल्गव्या च कलया कृतः ॥२१॥

आपके बहुत ही सूक्ष्म अंश द्वारा नाम और रूपके भेदसे ब्रह्मा आदि देवगणकी और चारो वेदोंकी तथा चराचर लोककी सृष्टि हुई है ॥२१॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो,
निर्यान्ति संयान्त्यस कृत्स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुण संप्रवाहो,
बुद्धिर्मनः खानि शरीर सर्गाः ॥२२॥
स वै न देवासुर मर्त्यतिर्यङ्,
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चा सनि,
निषेध शेषो जयतादशेषः ॥२३॥

जैसे अग्निसे तेज और सूर्यमण्डलसे किरणें निकलती हैं और फिर वह तेज और किरणें अग्नि और सूर्यमें ही लीन हो जाती है वैसे ही बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीरोंका प्रवाह जिनसे प्रकट होता और जिनमें लीन हो जाता है वह देव नहीं हैं असुर नहीं हैं मनुष्य नहीं हैं, पशु नहीं हैं, पक्षी नहीं हैं, स्त्री, पुरुष और और नपुंसक नहीं हैं, चिन्ह हीन कोई प्राणिविशेष भी नहीं हैं, गुण नहीं हैं, कर्म नहीं हैं, सत् और असत् भी नहीं है; किन्तु 'यह नहीं हैं' 'वह भी नहीं हैं' इस भांति सब वस्तुओंका निशेध करनेके अन्तमें अवधिस्वरूप जो कुछ अवशिष्ट रहता है, वही वह हैं, उन्हीं शेषविहीन ब्रह्मकी जय हो ॥२२॥२३॥

जिजीविषे नाहमिहामुया किमन्त,
र्बहिश्चा वृतये भयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवः,
तस्यात्म लोका वरणस्य मोक्षम् ॥२४॥

इस लोकसे वह भगवान् मुझे शीघ्र ही मुक्त करें । मैं प्राण बचानेकी

इच्छा नहीं करता, क्योंकि यह गजशरीर बाहर और भीतर अज्ञानरूप अंधकारसे आछन्न है, इसके रहनेसे कोई प्रयोजन नहीं है। अज्ञान, जो कि आत्मतत्वके प्रकाशको ढकनेवाला आवरण है सो मोक्षके समय भी पूर्णरूपसे नहीं नष्ट होता। उसी अज्ञानसे मुक्त होनेकी मेरी आकांक्षा है ॥२४॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वम्, विश्वं विश्व वेदसम्।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म, प्रणतोस्मि परं पदम् ॥२५॥

जिन्होंने इच्छा करके विश्वकी सृष्टि की है, विश्व जिनका स्वरूप है, तथापि जो विश्वसे विभिन्न हैं, विश्व ही जिनकी संपत्ति है एवं जो विश्वके आत्मा हैं उन्हीं परमपद परब्रह्मको प्रणाम है ॥२५॥

योगरन्धित कर्माणो, हृदि योग विभाविते।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति, योगेशं तं नतोस्म्यहम् ॥२६॥

भागवत धर्मके संसर्गसे जिनके सब कर्मबीज जल गये हैं वे सब योगिजन, जो योगसे शुद्ध हो गये और वे अपने हृदयमें जिन योगेश्वरका दर्शन करते हैं उनको नमस्कार है ॥२६॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग,
शक्ति त्रयायाखिल धी गुणाय।
प्रपन्न पालाय दुरन्त शक्तये,
कदिन्द्रियाणा मन वाप्य वर्त्मने ॥२७॥

आपकी तीनों शक्तियोंका रागादिरूप—वेग असह्य है। आप बाहरी दृष्टिसे इन्द्रियगुण-रूप प्रतीत होते हैं। आप शरणागत व्यक्तियोंका पालन करते हैं, आपकी शक्ति अनन्त है। जिन्होंने इन्द्रियोंको अपने वशमें नहीं कर पाया वे आपके मार्गको नहीं पाते। हे भगवन्! आपको प्रणाम है ॥२७॥

नायं वेद स्वमात्मानं, यच्छक्त्याहंधिया हतम्।

त दुरत्यय माहात्म्यं, भगवन्तमितोस्म्यहम् ॥२८॥

जो अहं-बुद्धि-रूपिणी अपनी मायामें समाच्छन्न रहनेके कारण लोगोंके ज्ञानसे अतीत हो रहे हैं उन असीम महिमावाले ईश्वरके चरणोंकी शरण मैंने ग्रहण की है ॥२८॥

(श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध
चतुर्थ अध्याय से)

—:०:—

(गजेन्द्र की उपरोक्त प्रार्थना पूज्य मालवीय जी की अत्यन्त प्रिय प्रार्थना है। जब कभी उनपर कोई धर्म संकट आपड़ता था उस समय वह उपरोक्त प्रार्थना का पाठ कर अपने कर्तव्य का निश्चय किया करते थे। इस संबंध में एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि वाइसराय की कौंसिल में प्रेस संबधी काला कानून पेश था। महामान्य गोखले जी, जो मालवीयजी के परममित्र थे और जिनपर उनका बड़ा श्रद्धाभाव था, प्रेस ऐक्ट का समर्थन कर रहे थे। मालवीयजी बड़े धर्म संकट में पड़े। एक ओर आत्मा की पुकार थी कि प्रेस ऐक्ट का विरोध होना चाहिये दूसरी ओर महामान्य गोखले का आग्रह। अन्त में मालवीयजी ने भगवान की शरण ली। कौंसिल भवन में बैठे ही बैठे उन्होंने गजेन्द्र की उपरोक्त प्रार्थना का पाठ किया और जब पाठ के उपरान्त भी उनकी आत्मा का उत्तर यही रहा कि प्रेस ऐक्ट का विरोध होना ही चाहिये तो उन्होंने उसका डटकर विरोध किया। समय ने सिद्ध कर दिया कि पूज्य मालवीयजी का निर्णय ही ठीक था।)

पूज्य मालवीयजी महराज के प्रिय श्लोक

(जब मैं नवयुवक था तब से ये श्लोक मेरी सेवा-धर्म की गीता हैं, और मुझे अमित सुख के दायक हुये हैं ॥)

—मदन मोहन मालवीय
(सेवा अप्रैल १९२१)

यन्ममास्ति शुभं किंचित, तेन जन्मनि जन्मनि ।
भवेय महमार्तानां, प्राणि नामार्तिनाशकः ॥१॥

जो कुछ मेरे अच्छे कर्म हैं, उन से मैं यही चाहता हूँ कि जब जब मैं जन्म लूँ तब तब दुखी जीवों के दुःख को दूर करने वाला बनूँ ॥१॥

नत्वहं कामये राज्यं, नस्वर्गं, नाऽपुनर्भवम् ।
प्राणिनां दुःख तप्तानां, कामये दुःख नाशनम् ॥२॥

न तो मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ और न मोक्ष चाहता हूँ । विविध प्रकार के दुःखों से दुखित जीवों को मैं सुख पूर्वक रहते देखना चाहता हूँ ॥२॥

यथा च नानृता वाणी, मयैषा समुदा हृता ।
सत्येन तेन भगवान्, प्रसीदतु ममेश्वरः ॥३॥

यह जो कुछ मैं कह रहा हूँ बिलकुल सत्य है । मेरी इस सचाई से हे मेरे भगवान् ! तुम प्रसन्न हो ॥३॥

दुःखितानीह भूतानि, दृष्ट्वा स्याद्यो न दुःखितः ।
केवलात्म हितेच्छुर्यः को नृशंसतरस्ततः ॥४॥

'जो इस संसार में दुःखी जीवों को देखकर दुखी नहीं होता, और अपने ही हित की कामना किया करता है उससे बढ़ कर हृदय-हीन कौन होगा ॥४॥

दृष्ट्वांधः बधिर व्यंगान, ऽनाथान् रोगिणस्तथा ।
दया न जायते येषां, ते शोच्या मूढ़चेतनाः ॥५॥

अन्धों, बहरों, लूले-लंगड़ों, अनाथों तथा रोगियों को देखकर जिसके हृदय में दया नहीं उत्पन्न होती, वे मूढ़ ज्ञानी निन्दनीय हैं ॥५॥

कोनु सस्यादुपायोऽत्र, येनाहं दुःखितात्मनाम् ।
अन्तः प्रविश्य भूतानां, भवेयं दुःख भाक् सदा ॥६॥

ऐसा कौन सा उपाय है, जिससे मैं दुखियों के हृदय में प्रवेश कर के उनका दुःख नाशक बनूं ॥६॥

अपहृत्यार्तिमार्त्तानां सुखं यदुपजायते ।
तस्य स्वर्गोऽपवर्गोवा, कलां नाऽर्हति षोड़शीम् ॥७॥

दुखियों का दुख दूर करने से जो सुख उत्पन्न होता है उसकी बराबरी सब प्रकार की शोभा और सुख सम्पन्न स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त करने का सुख नहीं कर सकता ॥७॥

—: ० :—

सर्वे च सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

सब प्राणी सुखी हों, सब निरोग रहें. सब सुख-सौभाग्य देखें, कोई दुखी न हो॥

एकः स आत्मा पुरुषः पुराणः,
सत्यः स्वयं ज्योतरनन्त आद्यः ।
नित्यो ऽक्षरोजस्त्र सुखो निरंञ्जनः,
पूर्णोऽद्वयो मुक्तउपाधि तोऽमृतः ॥

वह एक ही आत्मा पुराण पुरुष, सत्य, स्वयं प्रकाश स्वरूप, अनन्त, सबका

आदि कारण, नित्य, अविनाशी, निरन्तर सुखी, माया से निर्लिप्त, अखंड, अद्वितीय, उपाधि से रहित, तथा अमर है।

त्रिविधं च शरीरेण वाचा चैव चतुर्विधम्।
मनसा त्रिविधं कर्म दश धर्म पथाँस्त्यजेत् ॥१॥
अदात्ताना मुपादानं हिंसा चैव विधानतः।
परदारोपसेवा च शरीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥२॥
पारुष्यमनृतश्चैव पैशुन्यश्चापि सर्वशः।
असम्बद्ध प्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥३॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्ट चिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशंच त्रिविधं कर्म मानसम् ॥४॥

(१) शरीर से होने वाले तीन प्रकार के पापों को, वाणी से होने वाले चार प्रकार के पापों को और मन से होने वाले तीन प्रकार के पापों को, इन दश पापों के मार्गों को छोड़ दो।

(२) बिना दिये हुये द्रव्य का लेना, शास्त्र से निषिद्ध हिंसा का करना और दूसरे की स्त्री से सम्बन्ध करना, यह तीन शरीर से किये गये पाप कहाते हैं।

(३) अप्रिय बात का कहना, झूठ बोलना, चुगली करना और सत्य भी बात हो, किन्तु जो जहां कहने के योग्य नहीं हो, वहाँ उसका कहना, ये चार प्रकार के जिह्वा के पाप कहलाते हैं।

(४) दूसरे के धन को अन्याय से लेने की चिन्ता करना, मन से निषिद्ध काम को सोचना (जैसे ब्रह्मवध और परदार-गमन इत्यादि) झूठी बात में आग्रह करना (जैसे ईश्वर नहीं हैं, पर लोक नहीं है, इत्यादि अज्ञात बातों पर हठ करना), ये तीन मन के पाप कहलाते हैं।

धर्मं चरत, माऽधर्मम्, सत्यं वदत, नानृताम्
दीर्घं पश्यत, मा ह्रस्वम्, परं पश्यत, माऽपरम् ॥

धर्म का आचरण करो, अधर्म का नहीं; सत्य बोलो, असत्य नहीं। दीर्घ दृष्टि रखो अर्थात् दूर की बात देखो, अपनी दृष्टि को संकुचित या छोटी न करो। ऊपर भगवान की ओर देखो, नीचे (दुनिया की ओर) नहीं।

अहिंसा सत्यम् अस्तेयम्, शौचम् इन्द्रिय-निग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मम्, चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन् मनुः॥

हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्रता का पालन करना, इन्द्रियों पर काबू रखना,-मनुने चारों वर्णों के लिये थोड़े में यह धर्म कहा है।

अहिंसा, सत्यम्, अस्तेयम्, अकाम-क्रोध-लोभता।
भूत-प्रिय-हितेहा च, धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥

हिंसा न करना, सच बोलना, चोरी न करना, विषय की इच्छा न रखना, क्रोध न करना, लोभ न करना, संसार के सारे प्राणियों का प्रिय और हित करना, यही सभी वर्णों का धर्म है।

श्रूयतां धर्म सर्वस्वम्, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्॥

धर्म का यह रहस्य सुनो और सुनकर हृदय में धारण करो। जिसे अपने लिये बुरा समझते हो उसे दूसरे के लिये मत करो।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि, यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः।
परोपकारः पुण्याय, पापाय पर पीड़नम्॥

करोड़ों ग्रन्थों में जो कहा गया है उसे मैं आधे श्लोक में कह रहा हूँ। दूसरों का भला करने से पुण्य होता है, बुरा करने से पाप

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस तत् कवयो वदन्ति॥

उठो, जागो, और श्रेष्ठ अर्थात् अच्छे पुरुषों को पाकर उनसे ज्ञान प्राप्त करलो। ज्ञानी लोग कहते हैं कि जिस तरह उस्तरे की तीखी धार पर चलना कठिन है, उसी तरह इस विकट मार्ग पर चलना कठिन है।

लाभस् तेषां जयस् तेषां कुतस् तेषां पराजयः।
येषाम् इन्दी वरश्यामो, हृदयस्थो जनार्दनः॥

जिनके हृदय में नीले कमल का सा सांवला, कमलापति जनार्दन बैठा हुआ है उन्हें लाभ ही लाभ, जय ही जय है। उनकी हार कहाँ होती है?

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।
योऽसौ विश्वम्भरो देवः, स भक्तान् किम् उपेक्षते?

विष्णु के भक्त व्यर्थ ही अन्न और वस्त्र की चिन्ता करते हैं। जो भगवान् सारी दुनिया को पालता है, वह अपने भक्त की अपेक्षा क्यों करने लगा?

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूति कर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सतत मव्यथैः॥

उठो, जागो, और शुभ कार्य करने में लग जाओ। निश्चय रक्खो कि शुभ कार्य सदा सफल होगा।

वेदों के कुछ मंत्र

संगच्छध्वं सं वदध्वं,
सं वो मनांसि जानताम।
देवा भागं यथा पूर्वे,
संजानाना उपासते॥

ऋग्वेद १०। १९१। २।

हे धर्म निरत मनुष्यों! तुम सब मिलकर एक रहो। तुम सब एक साथ चलो; एक बात बोलो, मन से एक ही अर्थ जानो।

जिस प्रकार पुराने ज़माने में देवता एक चित्त होकर अपना अपना भाग

लेते थे वैसे ही तुम भी आपसी मतभेद भुलाकर अपना अपना काम करो, अपना अपना भाग लो।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मन्ते यथा वः सुसहासति॥

ऋग्वेद १० । १९१ । ४

तुम अपने विचार, हृदय और मन को एक समान करो।

समान्ते मंत्रः समितिः समानी, समानं मनः सहचित्त मेषाम्।
समानं मंत्रमभि मंत्र मे वः, समानेन वो हविषा जुहोमि॥

ऋग्वेद १० । १९१ । ५

गुप्त सलाहों, सभाओं और हार्दिक विचारों को एक समान करने का यत्न करो।

ओऽम् सहनाववतु। सहनौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विना वधीतम् अस्तु। मा विद्विषावहै।
ओऽम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

वह परमात्मा हम दोनों (गुरु शिष्यों की) एक साथ रक्षा करे। हम दोनों (गुरु शिष्य) एक साथ पुरुषार्थ अथवा मेहनत करें। हमारी विद्या तेजस्वी हो। हम एक दूसरे से द्वेष न करें। ओऽम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ओऽम् असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर गमय।
मृत्योर मा ऽमृतं गमय॥

(हे प्रभो!) मुझे असत्य से सत्य में ले जाओ, अंधेरे से उजाले में ले जाओ, मृत्यु से अमरता में ले जाओ॥

———

पूज्य मालवीयजी के प्रिय भजन

(श्याम कल्याण)

दशरथ नन्दन राम जप रे।
राम जप, अभिराम जप रे॥
मत कर बैर, झूठ मत भाखै,
मत पर धन हर, मत मद चाखै
जिव मत मार, जुआ मत खेलै
नित पर हित कर
यही तेरो तप रे॥
दशरथ नन्दन राम जप रे॥

(स्वयं मालवीय जी द्वारा रचित)

(यमन कल्याण)

पारब्रह्म परमेश्वर पुरुषोत्तम परमानन्द।
नन्द नन्दन आनन्द कन्द, यशुदानन्द श्रीगोविन्द॥
दीनानाथ दुखभंजन, भक्तवत्सल जनरंजन।
जग-जीवन जगन्नाथ, काटहु दुख द्वन्द फन्द॥

(दुर्गा, झपताल)

करुणा करो आज।
दीन दयाल॥

डोलत नैया हमारी मंझधार ॥ करुणा करो आज ॥
वहत बयार, चहूँ ओर घनघोर ।
हे नाथ, करतार, बेड़ा करो पार ॥ करुणा करो आज ॥

(राग भैरवी)

श्री रामचन्द्र कृपालु भजमन, हरण भव भय दारुणम् ।
नव कंज लोचन कंज मुख, कर कंज, पद कंजारुणम् ॥
कन्दर्प अगणित अमित छविनव नील नीरज सुन्दरम् ।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरम् ॥
भज दीनबन्धु दिनेश दानव दैत्य वंश निकंदनम् ।
रघुनन्द आनन्द कन्द कौशल चन्द दशरथ नन्दनम् ॥
सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदार अंग विभूषणम् ।
आजान भुज शर चाप धर, संग्राम जित खरदूषणम् ॥
इमि वदत 'तुलसीदास' शंकर, शेष, मुनि मन रंजनम् ।
मम हृदय कंज निवास करु, कामादि खल दल गंजनम् ॥

(राग देश)

सीतापति रामचन्द्र श्रीपति रघुराई ॥
रसना रस नाम लेत सन्तन को दरश देत ।
विहँसत मुख मन्द मन्द सुन्दर सुखदाई ॥
केसर को तिलक भाल मानो रवि प्रात काल ।
श्रवणन कुंडल सुहात, रतिपति छवि छाई ॥
मोतिन की गले माल, तारा उड़गण विशाल ।

मानो गिरि शिखर फोरि सरवरि विहसाई ॥
दशन चलत चतुर चाल नैनामृत सम विशाल ।
अरुण नयन भृकुटि माल, नासिका सुहाई ॥
सरयू के नीरतीर विहरत रघुवंश वीर ।
'तुलसीदास' हरष निरखि चरनन रज पाई ।

(राग दरबारी कानड़ा—तीन ताल)

और नहीं कछु काम के,
मैं भरोसे अपने राम के—और०
दोऊ अच्छर सब दुख टारे
लोभ मोह मद काम के ॥और॥
कठिन कठिन उलझन सुलझावै
वारी जाऊँ वा नाम पै ॥
'तुलसीदास' प्रभु राम दया धन,
और देव सब दाम के—और०

(राग देश)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सों ?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तो सों ॥
ब्रह्म तू हौं जीव हौं, तू ठाकुर, हौं चेरो ।
तात, मात, गुरु, सखा, तू सब विधि हितु मेरो ॥

तोहि-मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै।
ज्यों-त्यों 'तुलसी' कृपालु, चरन-सरन पावै॥

(राग बिलावल)

हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हौं।
पावन-धाम विबुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हौं॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के एक-एक उपकार।
तदपि नाथ, कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार॥
विषय-वारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं विपत अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥
कृपा-डोरि बनसी-पद अंकुस, परमप्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥
हैं श्रुति-विदित उपाय सकल सुर, केहि-केहि दीन निहोरै।
'तुलसिदास' यहि जीव मोहरजु जेहि बाँध्यो सोइ छोरै॥

(राग पीलू)

नाथ कैसे गज के फन्द छुड़ायो ?
हंसि पूछैं जनकपुर की नार,
नाथ कैसे गज के फन्द छुड़ायो ?
हरे हरे गोबर अंगना लिपायो, गजमोती चौक पुरायो।
राम सिया दोनों चौके आये, आनन्द बजत बधायो॥
सुघर सखी सब हिल मिलि आईं, कंगन लै उरझायो।
छूटत नाहिं सियाजी को कंगन, कैसे के चाप चढ़ायो ?

सबरी के बैर सुदामा के तन्दुल रुचिरुचि भोग लगायो।
दुर्योधन घर मेवा त्यागो साग बिदुर घर खायो॥
गज औ ग्राह लड़े जल भीतर गज डूबन नहिं पायो।
गज की टेर सुनी रघुनन्दन पांव पियादे धायो॥
धन राजा दशरथ धन कौशिल्या जिन ऐसो सुत जायो।
'तुलसीदास' कुसुम रंग डोरा, हरि के हाथ न आयो॥

(राग पीलू)

भरत जू कपि से उऋण हम नाहीं।
सौ योजन मर्याद सिंधु की, कूद गयो छण माहीं॥
लंका जार सिया सुधि लाये, गर्व नहीं मन माहीं।
शक्ति बाण लाग्यौ लछिमन के, शोर भयो दल माहीं॥
द्रोणागिरि पर्वत ले आये, भोर होन नहिं पाई।
अहिरावण की भुजा उखाड़ी, पैठ रह्यो मठ माहीं॥
आज्ञा भंग कभू नहिं कीनी, जंह पठयो तंह जाई।
जो पै भरत हनुमत नहिं होते को लावै जग माहीं?

(राग कल्याण)

बन्दौ चरन कमल हरिराई।
जाकी कृपा कटाच्छ आँधरे, सबै कछू दरसाई॥१॥
बहिरे शब्द मूक पुनि बोलें रङ्क चलै सिर छत्र दुराई।
'सूरदास' स्वामी करुणामय बार-बार बन्दौ तिहिं पाई॥२॥

प्रार्थना



पूज्य मालवीय जी के आराध्य राधा कृष्ण की वह युगल
प्रतिमा जिसकी उन्होंने जीवन भर उपासना की।

(राग देश)

हे गोविन्द, हे गोपाल, हे गोविन्द राखो शरण,
अब तो जीवन हारे ॥ हे गोविन्द० ॥
नीर पियन हेतु गयो, सिन्धु के किनारे।
सिन्धु बीच बसत ग्राह, चरन धरि पछारे ॥१॥
चार पहर युद्ध भयो, लै गयो मंझधारे।
नाक, कान, डूबन लागे, कृष्ण को पुकारे ॥२॥
द्वारिका में शब्द गयो, शोर भयो भारे।
शंख चक्र गदा पद्म, गरुड़ लै सिधारे ॥३॥
'सूर' कहै सुनो श्याम, शरण हैं तिहारे।
अब की वार पार करो, नन्द के दुलारे ॥४॥

(राग झँझौटी)

प्रभु, मेरे औगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर वधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवै, कंचन करत खरो ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलोहि नीर भरो।
जब दोनों मिलि एक बरन भये, सुरसरि नाम परो ॥
यह माया भ्रमजाल कहावत 'सूर' श्याम सिगरो।
अबकी बेर मोहिं पार उतारो, नहिं प्रण जात टरो ॥

(राग भैरवी)

तुम मेरी राखौ लाज हरी ।

तुम जानत सब अन्तरजामी, करनी कछु न करी ॥
औगुन मोतें बिसरत नाहीं, पल छिन घरी घरी ।
सब प्रपंच की पोट बाँधिकैं, अपने सीस धरी ॥
दारा-सुत-धन मोह लिये हैं, सुधि-बुधि सब बिसरी ।
'सूर' पतित कों बेग उधारौ, अब मेरी नाव भरी ॥

(राग भैरवी)

सुनेरी मैंने निरबल के बल राम ॥
पिछली साख भरूँ सन्तन की,
आड़े सँवारे काम ॥
जबलगि गज बल अपनो बरत्यो,
नैक सर्‌यो नहिं काम ।
निरबल ह्वै बल राम पुकार्‌यो,
धाये आधे नाम ॥
द्रुपद-सुता निरबल भइ ता दिन,
तजि आये निज धाम ।
दुस्सासन की भुजा थकित भई,
वसनरूप भये स्याम ॥
अप-बल तप-बल और बाहु-बल,
चौथो है बल दाम ।

'सूर' किसोर कृपातें सब बल,
हारे कों हरि-नाम ॥

(राग सिन्धु भैरवी)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ?
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी फिर जहाज पै आवै ॥
कमल नैन को छांड़ि महाधम और देव को ध्यावै ।
परम गंग को छांड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील फल भावै ?
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ?

(राग पीलू)

सुदामा मन्दिर देखि डर्‌यो ।
सीस धुनै दोऊ कर मींड़ै, अंतर सोच पर्‌यो ॥
ठाढ़ी तिया मार्ग जोवै जो, ऊँचे चरन धर्‌यो
तोहिं आदर्‌यो त्रिभुवन को नायक, अब क्यों जात फिर्‌यो ?
इहाँ हुती मेरी तनिक मड़ैया, को नृप आनि छर्‌यो ?
'सूरदास' प्रभु करि यह लीला, आपद विप्र हर्‌यो ॥

(राग मलार)

आज जो हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ ।
लाजों हौं गंगा जननी को, शांतनु सुत न कहाऊँ ॥
स्यंदन खंडि महारथ खंडों, कपि-ध्वज सहित डुलाऊँ ।
इती न करौं शपथ मोंहि हरि की, क्षत्रिय गतिहि न पाऊँ ॥

पांडवदल सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ ।
'सूरदास' रणभूमि विजय बिन, जियत न पीठ दिखाऊँ ॥

(राग बिलावल)

हम भक्तन के भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह ब्रत टरत न टारे ॥
भक्तै काज लाज जियधरिकै, पाव पियादे धाऊँ ।
जहं जंह भीर परै भक्तन को, तंह तंह जाय छुड़ाऊँ ॥
जो मम भक्त सों वैर करत है, सो निज वैरी मेरो ।
देखि विचार भक्त हित कारण, हांकत हौं रथ तेरो ॥
जीते जीत भक्त अपने की, हारे हारि विचारौं ।
'सूरदास' सुनि भक्त विरोधी, चक्र सुदर्शन धारौं ॥

(राग आसावरी)

आज नन्द जू तुमरे घर में, पुत्र जन्म सुनि आयो ।
लग्न शोधि औ तिथ को गिनि कै चाहत तुम्हें सुनायो ॥
संवत सरस भाद्रपद मासे आठै तिथि बुधवार ।
कृष्णपक्ष रोहिणी अर्ध निशि हर्षण योग उदार ॥
वृप है लग्न उच्च के निशिपति तनय बहुत सुख देहैं ।
चौथे सिंह राशि के दिनपति जीत सकल में ह्वै है ॥
पांचे बुध कन्या के जो है पुत्रन बहुत बढ़ैहैं ।
छठे हैं शुक्र तुला के बलयुत शत्रु रहन नहिं पैहैं ॥

भाव भवन में मकर महीसुत पूर्णैश्वर्य करै है ॥
कर्म भवन में ईश शनीचर श्यामवर्ण तन ह्वै है ।
लाभ भवन में मीन बृहस्पति नौ निधि घर में ऐहै ॥
आदि सनातन हरि अविनाशी घट घट अन्तर्यामी ।
सो तुमरे गृह आय प्रकट भये 'सूरदास' के स्वामी ॥

(राग जैजवन्ती)

आज आनन्द जगत जानै, औतरे वसुदेव के ।
देवकी के हेत माधव, हरि आये सुरलोक से ॥
शंख चक्र गदा जो धारे, जगमग महल मसान है ।
दोउ कर जोरे देवकी जी विनवै, चक्रभुजी भगवान के ॥
चोवाचन्दन क्रीट मुकुट, गले में तुलसी माल है ।
दोउ करजोरे बसुदेव जी विनवैं, मैया को सुख दीजिये ॥
नन्द के कन्या जो प्रकटी, वहीं प्रकटो जाय के ।
कन्या को उठाय लाओ, हमहि देउ पौढ़ाय के ॥
बज्र लागे किवाड़ खुलिगे, वेगि सब जग सोवहीं ।
इधर उधर के भूप सोये, कंस के पहरू सोये ॥
चमक चमकै गरज बरसै, निशि अँधियारी रात है ।
सिंह गरजै, बाघ तड़पै, शेशनाग जी को शेष है ॥
थाह जमुना अथाह होइ गई, गोद में बसुदेव के ।
दियो चरण लटकाय गोविन्द, चरण छुइके हटि गईं ॥
कृष्ण की वाणी को सुनि के, बसुदेव जी गोकुल गये ।

कन्या को उठाय लाये, बालक दियो पौढ़ाय के ॥
बज्र लागे किवाड़ दइगये, बेगि सब जग जागहीं ।
इधर उधर के भूप जागे, कंस के पहरू जगे ॥
कंस को जब खबर पहुँची, बालक रोय सुनावहीं ।
सुनत कंस पछाड़ खाई, कन्या लियो मँगवाय के ॥
उठाय कन्या, पकड़ चोटी, पटक्यौ धोबी बाट पै ।
छूटी हाथ से योगमाया, आकाश से वाणी भई ॥
तेरो मारनहार बैरी, गोकुल प्रकट्यो जाय के ।
सुनत कंस पछाड़ खाई, होनी रही सो ह्वै गई ॥
एक गावै, एक बजावै, एक बांधै बन्दना ।
कोई सुहागिल सोंठ कूटैं, कोई चन्दन रंचना ॥
काहू को दियो नन्द गाय बछड़ा, काहू को सुरग पटोरियाँ ।
काहू को दियो रंगवाय चून्दर, काहू को मोहर लुटाइयाँ ॥
नन्द के आनन्द प्रकटे, जय कन्हैया लाल की ।
यह ब्रज हमरो आनन्द होइगयो, 'सूर' के यश गाइयाँ ॥
युग युग जियौ तेरो श्याम सुन्दर, हांथिन मोहर लुटावहीं ।
यज्ञ हमरो होय पूरन, विप्र के यश गाइयाँ ॥

(राग सोहर)

कृष्ण जनम जब भयो बधावा लै चलीं ।
गावत मंगलचार हुआँ हमहूँ चलीं ॥
धन यह मंत्री लोग धन्य यह रोहणी ।

धन भादों की रात कन्हैया जी को जनम भयो ॥
धन यशुदा तेरो भाग जो गोद खेलावहीं।
हुलस हुलस जिया होत दूध पिलावहीं ॥
नन्द दुआरे ठाढ़, लुटावैं सम्पदा।
याचक भयो हैं निहाल बढ़ै सुख सम्पदा ॥
मालिन लाई फूल, तम्बोलिन बीरुला।
ग्वालिन लाई दूध, कृष्ण नहवाइये ॥
जो यह मंगल गावैं, गाय सुनावहीं।
'सूरदास' बलिजाऊँ, परम पद पावहीं ॥

(सिन्धु भैरवी)

मैया मेरो कबहिं बढ़ैगी चोटी ?
किती बार मोहिं दूध पियत भइ, यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों, ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत नहावत पोछत, नागिन सी भ्वैं लोटी ॥
काचो दूध पियावति पचि पचि, देत न माखन रोटी।
'सूरश्याम' चिरजीवो दोउ भैया, हरि हलधर की जोटी।

(राग असावरी)

मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीन्हो, तोहि जसुमति कब जायो ?
कहा कहौं यहि रिसि के मारे, खेलन हौं नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, कौन तुम्हारो तात ॥

गोरे नन्द, जसोदा गोरो, तुम कत श्याम शरीर ?
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर ॥
तू मोहीं को मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ नहिं खीझै ।
मोहन का मुख रिस समेत लखि, जसुमति सुनि सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत ।
'सूरश्याम' मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥

(राग भैरव)

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो ।
भोर भयो गैयन के पीछे, मधुबन मोंहि पठायो ॥
चार पहर बंशीबट भटक्यो, सांझ परे घर आयो ।
मैं बालक बहियन को छोटो, छींका केहि बिधि पायो ?
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो ।
तू जननी मन की अति भोरी, इनके कहे पतियायो ॥
जिय तेरे कछु भेद उपजि है, जानि परायो जायो ।
यह लै अपनी लकुटि कमरिया, बहुतहि नाच नचायो ।
'सूरदास' अति बिहंसि जसोदा, लै उर कंठ लगायो ॥

(राग रामकली)

चंद्र खिलौना लैहौं मैया मेरी, चद्रखिलौना लैहौं ।
धौरी को पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुथैहौं ।
मोतिन माल न धरिहौं उर पर, झिँगुली कंठ न लैहौं ।
जैहौं लोटि अबइ धरनी पर, तेरी गोद न ऐहौं ।
लाल कहैहौं नन्द बबा कौ, तेरो सुत न कहैहौं ।

कान लाय कछु कहति जसोदा, दाउहिं नाहिं सुनैहौं।
चन्दा हू ते अति सुन्दर तोहि,नवल दुलहिया ब्यैहौं।
तेरी सौंह मेरी सुन मैया, अबही व्याहन जैहौं।
'सूरदास' सब सखा बराती, नूतन मंगल गैहौं॥

(राग विलावल)

आजु मैं गाइ चरावन जैहौं।
बृन्दावन के भांति भांति फल अपने कर तें खैहौं॥
ऐसी अबहिं कहौ जनि वारे, देखौ अपनी भांति।
तनिक तनिक पग चलिहौ कैसे, आवत ह्वै है राति॥
प्रात जात गैयां लै चारन, घर आवत हैं सांझ।
तुम्हरो कमल बदन कुम्हिलैहै, रेंगत घामहिं सांझ॥
तेरी सौं मोहि घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
'सूरदास' प्रभु कह्यो न मानत, परे आपनी टेक॥

(राग खमाज)

मैया, हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरे पाइ पिराइ॥
जौं न पत्याहि पूछ बलदाउहिं, अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि-सुनि जसुमति ग्वालन को, गारी देत रिसाइ॥
मैं पठवति अपने लरिका को, आवै मन बहराइ।
'सूर श्याम, मोरो अति बालक, मारत ताहि,रिंगाइ॥१८॥

(राग असावरी)

को माता को पिता हमारे ?

कब जनमत हमको तुम देख्यो, हँसी लगत सुनि बैन तुम्हारे॥
कब माखन चोरी करि खायो, कब बांधे महतारी।
दुहत कौन की गैया चारत, बात कही यह भारी॥
तुम जानति मोहिं नन्द ढुटौना, नन्द कहाँ तें आये?
हम पूरन अवगति अविनासी, माया सबनि भुलाये॥
यह सुनि ग्वालिन सब मुसकानी, ऐसेउ गुन हौ जानत?
'सूर श्याम' जो निदरौ सब ही, मात-पिता नहिं मानत॥

(राग गौड़ सारंग)

आज हौं एक-एक करि टरिहौं।

कै हमहीं, कै तुमहीं माधव, अपुन भरोसे लरिहौं॥
हौं तौ पतित सात पीढ़िन कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नचत चाहत हौं, तुम्हैं विरद बिनु करिहौं॥
कत अपनी परतीत नसावत, मैं पायो हरि हीरा।
'सूर' पतित तबही उठि है प्रभु, जब हँसि देहौ बीरा॥

(राग रामकली)

माय माखन तनक दैरी। तनक दे, मैय्या, तनक दे री।
छोटे से कर पै छोटी छोटी अंगुली, मांगत चरन चलाय।
तनिक माग्यों बहुत दीन्ह्यो, लीन्हो कंठ लगाय॥
भोले से मुख पै दूध की दंतुली मांगत हैं तुतलाय।

मुख चूमैं मुसक्य नन्दरानी लीन्हों कंठ लगाय ॥
माखन मांगत श्याम सुन्दर, देत पग पटकाय ।
'सूरश्याम' की तनक चोटी, गूँथत मात बुलाय ॥

(राग भैरवी)

कहन लगे मोहन मैया मैया
नन्द बवा से बाबा, बाबा, बलदाऊ जी से भैया ॥
दूर खेलन मत जाओ प्यारे ललना मारेगी काहूकी गैया ॥
औरन के तो दुइ औ चार हैं, मेरे तो एक कन्हैया ॥
'चन्द्रसखी' भज बालकृष्ण छवि, यशुमति लेत बलैया ॥

(राग गौरी)

देखो माई बन से मोहन आवत ॥
आगे आगे धेनु पीछे यदुनन्दन,
गोवन को टहलावत ॥
काली पीली धौरी धूमर, लै लै नाम पुकारत ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, मुरली अधर बजावत ॥
कंचन थार कपूर की वाती, यशुमति आरती उतारत ।
'सूर' कहैं मोहि याही अचंभा, वंशी में गौरी गावत ॥

(राग रामकली)

हरि हारे जीते श्रीदामा, वरवस ही किन करत हँसैया ॥१॥
जाति-पाँति हमते बड़ नाहीं, ना हम बसत तिहारी छैया ।
अति अधिकार जनावत काहे, याते अधिक तिहारी गैया ॥२॥

रूठि करै तासों को खेलै रहे बैठि जँह-तँह सब गोय्याँ ।
'सूरदास' प्रभु खेलोइ चाहत दाँव दियो करि नन्द दोहैया ॥३॥

(राग परज)

संदेसौ देवकी सों कहियो ।
हौं तो धाइ तुम्हारे सुत की, मया करति नित रहियो ॥
जदपि टेव तुम जानति उनकी, तऊ मोंहि कहि आवै ।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हहि, माखन-रोटी भावै ॥
तेल उबटनो अरु तातो जल, ताहि देखि भज जाते ।
जोइ-जोइ मांगत सोइ-सोइ देती, क्रम-क्रम करि-करि न्हाते ॥
'सूर' पथिक, सुनि मोंहि रैन-दिन, बढ़्यो रहत उर सोच ।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन, ह्वै है करत संकोच ।

(राग छायानट)

कहियो जसुमति की आसीस ।
जहाँ रहौ तहँ नन्द लाड़िले जीवो कोटि बरीस ॥
मुरली दई दोहनी घृत भरि, ऊधो धरि लई सीस ।
इह घृत तौं उनही सुरभिनकौ, जो प्यारी जगदीस ॥
ऊधो चलत सखा मिलि आए, ग्वाल बाल दसबीस ।
अबके इहां बृज फेरि बसायो 'सूरदास' के ईस ॥

(राग विलावल)

ऊधो इतनो कहियो जाइ ।
आवहिगे हम दोनों भैया, मैया जनि अकुलाइ ॥१॥

याको विलग बहुत हम मान्यौं, जब कहि पठयो धाइ ।
वह गुन हमको कहा बिसरिहैं, बड़े किए पय प्याइ ॥२॥
और जो मिलौं नन्द बाबासों, तब कहिए समुझाइ ।
तौलौं दुखी होन नहिं पावैं, धवरी धूमरि गाइ ॥३॥
जद्यपि इहाँ अनेक भांति सुख, तद्यपि रह्यो नहिं जाइ ।
'सूरदास' देखौं बृजवासिन, तबहीं हियो सिराइ ॥४॥

(राग सारंग)

कह्यो कान्ह सुनु यशुमति मैया ।
आवहिंगे दिन चारि पांच में, हम हलधर दोउ भैया ॥
मुरली, बेनु, विषाण, देखियो, शृङ्गी बेर सबेरो ।
लै जिनि जाय चुराय राधिका, कछुक खिलौना मेरो ॥
जा दिनते तुमसों बिछुरे हम, कोउ न कहत कन्हैया ।
भोरहि नाहिं कलेऊ कीनो, सांझ न पय पियो धैया ॥
कहत न बन्यो संदेशो सोपैं, जननि जितो दुख पायो ।
अब हमसों वसुदेव देवकी, कहत आपनो जायो ॥
कहियो कहा नंदबाबा सों, बहुत निठुर मन कीनों ।
'सूर' हमहिं पहुँचाई मधुपुरी, बहुरी शोध न लीनों ॥

(राग रामकली)

कहियो श्यामसों समुझाइ ।
यह नातो नहिं मानत मोहन, मनो तुम्हारी धाइ ॥१॥
एक बार माखन के काजैं, मैं राखी अटकाइ ।

याको विलग मानो जिन मोहन, लागत मोहिं बलाइ ॥२॥
बारहि बार इहैं लौं लागी, गहे पथिक के पाइ ।
'सूरदास' या जननी को जिय, राखौ वदन देखाइ ॥३॥

(राग विहाग)

ऊधो अब नहिं श्याम हमारे ।
मधुबन बसत बदलि से गे वे माधव मधुप तिहारे ॥१॥
एतनेहि दूर भए कछु औरे जोइ-जोइ मग हारे ।
कपटी कुटिल काक कोयल ज्यों अन्त भए उड़ि न्यारे ॥२॥
रस लै भंवर जाइ स्वारथ हित प्रीतम चेत बिसारे ।
'सूरदास' तिन सो कहा कहिये जे तनहूँ मन कारे ॥३॥

(राग सारंग)

धनि यह बृन्दावन को रेनु ।
नन्दकिशोर चराइ गैया, मुखहि बजाई बेनु ॥
मदन मोहन को ध्यान धरै जो,अति सुख पावत चैनु ।
चलत कहा मन बसत पुरातन, जहाँ लेन नहिं दैनु ॥
इहाँ रहौं जहँ जूठनि पावैं, बृजवासी के ऐनु ।
'सूरदास' ह्याँकी सरवरि नहि, कल्पवृच्छ सुरधेनु ॥

(राग मलार)

मधुकर श्याम हमारे ईश ।
तिनको ध्यान धरैं निशिवासर, औरहि नवै न शीश ॥
योगिन जाइ योग उपदेशहु, जिनके मन दश बीस ।

एकै चित, एकै वह मूरति, लगन लगै दिन तीस ॥
काहे को निर्गुण ज्ञान गनत है, जित तित डारत खीस ।
'सूर' हृदय में बसत निरन्तर, त्रिभुवनपति जगदीश ॥

(राग गौंड़मलार)

आदि सनातन हरि अविनासी ।
सदा निरंतर घट घट वासी ॥
पूरण ब्रह्म पुराण बखानै ।
चतुरानन शिव अंत न जानै ॥
गुणगण अगम निगम नहि पावै ।
ताहि यशोदा गोद खिलावै ॥
एक निरंतर ध्यावै ध्यानी ।
पुरुष पुरातन है निर्वानी ॥
जप तप संयम ध्यान न आवै ।
सोई नन्द के आंगन धावै ॥
लोचन श्रवणन रसना नासा ।
नापद पानिन गुण परगासा ॥
विश्वम्भर निज नाम कहावै ।
घर घर गोरस जाय चुरावै ॥
शुक शारद से करत विचारा ।
नारद से पावहिं नहिं पारा ॥
अवर वरन सुर तीनहि धारै ।

गोपिन को सो वदन निहारैं ॥
जरा मरन ते रहित अमाया ।
मात पिता सुत बंधु न जाया ॥
ज्ञान रूप हृदय में बोलै ।
सो नंद महर के आंगन डोलै ॥
जलधर अनिल अनल नभ छायो ।
पंच तत्व मिलि जगत उपायो ॥
काल डरै जाके डर भारी ।
सो ऊखल बांध्यो महतारी ॥
माया प्रगट सकल जग मोहै ।
कारन करन करै सो सोहै ॥
ब्रह्मादिक जेहि ध्यान न पावै ।
सो गोकुल में गाइ चरावै ॥
अच्युत रहे आद्य जलशाई ।
परमानंद परम सुखदाई ॥
लोक रचै राखै प्रतिपारै ।
सो ग्वालन संग लीला धारै ॥
गुण अतीत अविगत न जनावै ।
यश अपार श्रुति पार न पावै ॥
जाकी महिमा कहत न आवै ।
सो गोपिन संग रास रमावै ॥
जाकी महिमा लखै न कोई ।

निर्गुण सगुण धरै वपु सोई ।।
चौदह भुवन पलक में टारै ।
सो वन बीथिन कुटी सँवारै ।।
चरण कमल नित रमा लोवै ।
चाहत नेक नैनभरि जोवै ।।
अगम अगोचर लीलाधारी ।
सो राधावश कुंज विहारी ।।
भाग बड़े उन सब ब्रजवासी ।
जिनके संग रमे अविनासी ।।
जो रस ब्रह्मादिक नहिं पावैं ।
सो रस गोकुल गली बहावैं
'सूर' सुयश कहि कहा बखानै ।
गोविंद की गति गोविंद जानै ।।

(राग धनाश्री)

ऊधो मन माने की बात ।

दाख छोहारा छांडि अमृत फल, विषकीरो विष खात ।।
जो चकोर को देइ कपूर कोउ, तजि न अंगार अघात ।
मधुप करत घर कोरि काठ में, बधंत कमल के पात ।।
ज्यों पतङ्ग हित जानि आपनो, दीपकसों लपटात ।
'सूरदास' जाको मन जासों, सोई ताहि सोहात ।।

(राग धनाश्री)

योग ठगौरी ब्रज न बिकैहै ।
मूरी के पातन के बदले को मुक्ताहल देहै ?
यह व्यापार तुम्हारो ऊधो, ऐसेहि धर्‌यो रहि जैहै ।
जिनपै ते लै आये ऊधो, तिनहि के पेट समैहै ॥
दाख चाखिकै कडुक निबौरी, को अपने मुख खैहै ?
गुणकरि मोहि 'सूर' सांवरे को, निर्गुण ही निबहै है ॥

(सारङ्ग)

मनकी मन ही माहिं रही ।
पठं देहु मेरो लाल लड़ैतो, वारौं ऐसी हाँसी ॥१॥
भली करी कंसादिक मारे, सब सुर काज किए ।
अब इन गैयन कौन चरावै, भरि-भरि लेत हिए ॥२॥
खान-पान परिधान राज सुख, जो कोइ कोटि लड़ावै ।
तदपि 'सूर' मेरो बारो कन्हैया, माखन ही सचुपावै ।

(राग पूरबी-चौमासा)

मदन गोपाल, सँवलिया सी मूरत,
मेरो मन रह्यौ है लुभाय रे ।
दधि मोरी खाई, मटुक मोरी फोरी,
मंद मंद मुसकाय रे ॥
वृन्दावन में रहस रच्यौ है,
सहस सखी एक कान्ह रे ।

मोहनी रूप धरे शिव शङ्कर,
थिरकत त्रिभुवन नाथ रे ॥
शंख, चक्र, गदा, पद्म विराजै,
कर मुरली अधरान रे।
पीताम्बर की कछनी काछे,
गलबैजन्ती माल रे ॥
भवसागर अति जोर बहतु है,
प्रभुजी को नाम जहाज रे।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी शरण हौं,
बांह गहे की लाज रे ॥

(राग भैरवी)

सुनियो हो बलिराजा, वसुधा काहूकी न भई।
सतयुग में हरिनाकुश राजा, चारों खूट मही।
अति प्राचीन महा प्राक्रमीं, वाहू की न भई ॥टेक॥
त्रेता में भये रावण राजा, सोने की लंक मही।
एक लख पूत सवालख नाती, लकड़ी काहू न दई ॥टेक॥
द्वापर में दुर्योधन राजा, एकलख भीर सही।
सोलह योजन छत्र चलत हैं, माटी गिध न खई ॥टेक॥
कलजुग में कंसासुर राजा, प्रभु ने देह धरी।
कंस मार रेती में डार्यो, गोपी मगन भई ॥टेक॥
सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग, चारों युग हैं सही।
'सूरश्याम' गिरधर बिन अर्पण, या मुख धूल भरी ॥टेक॥

(राग सिन्धु भैरवी)

हरि बिन काह करै कोउ काको ?
तुम बिन दीन दयाल दयानिधि, नाम लेऊँ मैं काको ?
दुर्वासा ऋषि श्राप दियो है, तब राजा मन काप्यों ।
उलटी श्राप पड़ी दुर्वासहिं, परण रह्यो राजा को ॥
गज और ग्राह लड़े जल भीतर, थक्यो जोर बलवाको ।
त्याग्यो गरुड़, पियादे धायो, बंधन काट्यो वाको ॥
तार्यो पतित अनेक प्रभू ने, जाने कौन कहां को ?
रह्यो जात एक पतित जनम को, अंधरो, 'सूर' सदा को ॥

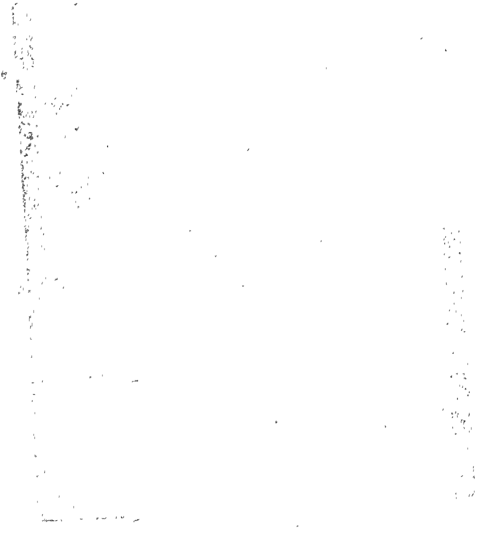
(राग भैरव)

नंद भवन को भूखन माई ।
यशोदा को लाल, वीर हलधर को, राधारमन परम सुखदाई ॥
शिव को धन, संतन को सर्वस, महिमा वेद पुरानन गाई ।
इन्द्र को इन्द्र, देव देवन को, ब्रह्म को ब्रह्म, अधिक अधिकाई ॥
काल को लाल, ईश ईशन को, अतिहि अतुल, तोल्यो नहिं जाई ।
'नन्ददास' को जीवन गिरधर, गोकुल-गांव को कुंवर कन्हाई ॥

(राग देश)

अँखियाँ श्याम मिलन की प्यासी ।
आप तो जाय द्वारिका छाये, लोक करत मेरी हाँसी ॥१॥
मेरे तो मन अस आवति है, करवट लौं चल कासी ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल की दासी ॥२॥

प्रार्थना



(राग परज)

मेरो हठ राखो हठीले लाल ।
तुम बिन मान कौन मेरो रखि है, समुझहु जिय गोपाल ॥१॥
हमको तो तुमरो बल प्यारे, तुव अभिमान दयाल ।
पै तुमहीं ऐसी जो करिहौ, कहँ जैहैं व्रज बाल ? ॥२॥
एक बेर बृज को फिरि आओ, लखि गौअन बेहाल ।
'हरीचन्द' बरू फेर जाइयो, मधुपुर कृष्ण कृपाल ॥३॥

(राग परज)

राखिए अपनेन को अभिमान
तुव बल जो जग गिनत न काहू, दीजै तेहि सनमान ॥१॥
तुमरे होय सहैं इतनो दुख, यह तो अनय महान ।
तुमहि कलङ्क, हमैं लज्जा अति, कहिहै कहा जहान ? ॥२॥
एक बेर फिर तू जग आओ, देहु जीव को दान ।
'हरीचन्द', गिरि कर धारनकी, करिकै सुरति सुजान ॥३॥

(राग पूरिया)

हरि हो अब मुख बेगि दिखाओ ।
सही न जात कृपानिधि माधो, एहि सुनतहि उठ धाओ ॥१॥
लखि निज जन डूबत दुख सागर, क्यों न दया उर लाओ ?
आरत बचन सुनत चुप ह्वै रहे, निठुर बानि बिसराओ ॥२॥
करुनामय कृपाल केशव तुम, क्यौं निज प्रनहि डिगाओ ?
लखि बिलखत 'हरिचन्द', दुखोजन, क्यौं नहिं धीर धराओ ॥३॥

(राग सारङ्ग)

जौ परि राखत हौ पहिचानि ।
तौ अबकै वह मोहन मूरति, मोहि देखावहु आनि ॥१॥
तुम राही वसुदेव गेहिनी, हौ गंवारि बृजवासी ।

(राग कल्याण)

भोले मन संझा सुमिरन कर ले ।
सांझ सवेरे और दुपहरी तीनों बखत हरि भज ले ।
गंगा गीता और भागवत ये तीनों हृदय में धरले ।
चोरी चुगली और पर निन्दा, ये तीनों हृदय से तज दे ॥
जाको हरि की भक्ति न भावै वाके भरोसे न बसिये ।
संझा सुमिर सांवरी मूरत, मोहन मुरली धरले ॥
'चन्द्रसखी' भज बालकृष्ण छवि हरि के चरण चित धरले ॥

(राग परज)

वे दिन सपन रहे के साँचे ।
जे हरि संग बिहरत याही बृज, बीति गए रंग राचे ॥१॥
कहाँ गई वह सरद रैन सब, जिनमें हरि संग नाचे ।
कहँ वह बोलन हँसन-मिलन सुख, मिले जौन बिनु जाँचे ॥२॥
हाय दई कैसी दीनी दुख, सहत करे जे जाँचे ।
'हरीचन्द' हरि बिनु सूनो बृज, लखनाहि हित हम बाँचे ॥३॥

*मेरे देश

मेरे प्यारे मेरे देश,
सकल विश्व के वैभव से भी बढ़ कर प्यारे देश।
मेरा पूर्ण अमल सुस्नेह,
निश्छल, निश्चल, निश्चय स्नेह,
बलि होने को उद्यत स्नेह।
तेरी बलि वेदीपर अर्पित,
निज सर्वस्व, प्राण और देह।
मेरे प्यारे, मेरे देश
सकल विश्व के वैभव से भी बढ़ कर प्यारे देश।
मेरे प्यारे मेरे देश*

वन्दे मातरम्।

*मूल पद्य—

"आइ वाऊ टुदी, माई कन्ट्री, औल अर्थली थिङ्ग्स एबव,
ऐन्टायर ऐन्ड होल ऐएड पर्फैक्ट, दि सर्विस औफ़ माइ लव,
दि लव दैट आस्क्स नो क्वैश्चन, दि लव दैट स्टैएड्स दि टेस्ट,
दैट लेज़ अपौन दि आल्टर, दि डियरेस्ट ऐएड दि बेस्ट,
दि लव दैट नैवर फ़ौल्टर्स, दि लव दैट पेज़ दि प्राइज़,
दि लव दैट मेक्स अनडौन्टेड, दि फ़ाइनल सैक्रीफ़ाइस,
दि लव दैट आस्क्स नो क्वैश्चन, दि लव दैट स्टैएड्स दि टेस्ट,
दैट लेज़ अपौन दि आल्टर, दि डीयरेस्ट ऐएड दि बेस्ट,
आइ वाऊ टुदी, माइ कन्ट्री, औल अर्थली थिङ्ग्स एबव,
ऐन्टायर ऐएड होल ऐएड पर्फ़ैक्ट, दि सर्विस औफ़ माई लव"

* समाप्तम् *